वर्ष ६, अंक ३

श्रीकृष्णाय नमः

मार्गशीर्ष पूर्णिमा १९८८

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

वेद भगवान

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका ।

वर्ष ६ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, मार्गशीर्ष पूर्णिमा सं० १९८८ | अंक ३ पूर्ण संख्या ६३

वेदोपदेश

अधः पश्यस्व मोपरी संतरां पादकौ हर ।
मातेव कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥ १ ॥

हे स्त्री ! ऊपर देख कर मत चलो नीचे देख कर चलो दोनों पैरों को मिला के सभ्यता पूर्वक उठाओ । तुम्हारे वक्षस्थल को कोई न देख सके । क्योंकि स्त्री जाति ब्रह्मवादिनी हुवा करती हैं ॥ १ ॥

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धयाहूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥ २ ॥

श्रद्धा से अग्नि प्रज्वलित किया जाता है, श्रद्धा से हविराहुति दी जाती है । ऐश्वर्य के शिर पर स्थित जो श्रद्धादेवी है उस को विविध वचन से जगत् में प्रख्यात करते हैं ॥ २ ॥

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धा पयेह नः ॥ ३ ॥

हम प्रातः काल श्रद्धादेवी बुलाते हैं मध्याह्नकाल में श्रद्धादेवी को बुलाते हैं। सूर्य की अस्त बेला में भी श्राद्धादेवी को बुलाते हैं श्रद्धे! आप यहां हम को श्रद्धान्वित कीजिए॥ ३॥

श्रद्धां देव यजमाना वायु गोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्या कृत्या श्रद्धया विन्दते वसु॥ ४॥

ईश्वर रक्षित देव और यजमान श्रद्धा की ही उपासना करते हैं। हार्दिक संकल्प द्वारा श्रद्धा की ही उपासना करते हैं क्योंकि श्रद्धा से अभीष्ट वित्त पाता है॥ ४॥

उष्णो हिमे पंचदश साकं पचन्ति विंशतिम्।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी प्रिणन्ति मे॥ ५॥

हे इन्द्राणी! निश्चय मेरे लिये १५ और बीस वृषभ पकाते हैं और मैं उन को खाता हूं तब मैं बहुत स्थूल होजाता हूं और मेरी दोनों बगलों को तृप्त करते हैं॥ ५॥

भगवद्भक्ति।

[ले० पूज्य श्री स्वामी भोले बाबा जी]

तस्यैव सफलं जन्म जीवनं तस्य शोभनम्।
विष्णुपादाम्बुजे यस्य मानसं भ्रमरायते॥

ज्ञान ध्यान निष्ठा।

मंसाराम- महाराज! श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहास सबका तात्पर्य यह ही है कि विज्ञान से मुक्ति नहीं होती। वेदान्त, सांख्य, पातञ्जल, मीमांसा, न्याय और वैशेषिक छओं शास्त्र वेद के अर्थ का प्रतिपादन करने वाले हैं, इसलिये वेद के अंग कहलाते हैं। सभी मतमतान्तरों का इनमें से किसी एक शास्त्र में मूल कारण मिलता है, यह बात कदापि नहीं है कि किसी पन्थ का मूल शास्त्र से बाहर हो सब शास्त्र ज्ञान को ही प्रधान मानते हैं परन्तु मुक्ति का वर्णन भिन्न २ रीति से करते हैं इसलिये ज्ञान का स्वरूप छः प्रकार का देखने में आता है अर्थात् प्रत्येक आचार्य अपने मूलमत के अनुसार ज्ञानशब्द का अर्थ लिखता है और अपने अर्थ को ही सच्चा ठहराता है, क्या सब के ज्ञान का फल एक ही है अथवा भिन्न २ है, यह मैं आज आप से जानना चाहता हूं, और ज्ञान का मुख्य अर्थ आपने क्या निश्चय किया है, यह भी सुनना चाहता हूं, आपके वचनों पर मुझे विश्वास है।

मस्तराम- भाई! विचार कर देखा जाय तो सब शास्त्रोंका फल एकही निकलता है, यदि सब शास्त्रों को मिला कर थोड़ा भी अर्थ ज्ञान शब्द का बताया जाय तो बहुत विस्तार हो जाय और फलका भी विशेष लाभ न हो, इसलिये शास्त्रोंके मतवाद को छोड़ कर मुख्य अर्थ और अभिप्राय जो वेद का है और बहुत शास्त्रों के मतानुसार है वह ही कहता हूं।

ध्यान देकर सुन-ईश्वर माया और जीव, इन तीनों का यथार्थ स्वरूप जानकर और ईश्वर की अद्वैतता का दृढ़ निश्चय करके ईश्वरको ही सर्वत्र जानना और देखना, यह ज्ञान का स्वरूप है। भाव यह है कि ईश्वर एक है, असहाय है और अपंग है और जो गुण वेद और शास्त्रों ने सच्चित् आनन्द घन, अच्युत, अनन्त, नित्य, निर्विकार, व्यापक, अविनाशी इत्यादि वर्णन किये हैं, उन गुणों से युक्त है और सब गुणों से रहित है।

भक्तजन पाँच स्वरूप से ईश्वर की उपासना करते हैं, पांचों को भिन्न २ करके बताता हूं।

प्रथम उपासना- प्रथम उपासना परम है अर्थात् श्रीविष्णु नारायण वैकुण्ठ निवासी का उस स्वरूप, सामग्री और समाज के साथ ध्यान और आराधन करना, जिनका वर्णन वेद और शास्त्रों ने भगवद्ध्यान के लिये किया है। यह बात समझने की है कि श्रीरघुनन्दन स्वामी के जो उपासक हैं, वे श्रीरघुनन्दन स्वामी अयोध्यावासी को परम मानते हैं और जो श्रीकृष्ण स्वामी के उपासक हैं वे श्रीकृष्ण स्वामी गोलोक निवासी को परम-परमात्मा मानते हैं। अभिप्राय यह है कि जो जिस स्वरूप के अर्थात् जो राम, कृष्ण, विष्णु, अथवा नृसिंह के उपासक हैं, वे अपने इष्ट को परम मानते हैं। हे संसाराम ! यह वह सगुण रूप है कि जिसका शिव, ब्रह्मा आदि योगीजन भांति २ की समाधि लगा कर ध्यान करते हैं और भेद नहीं पाते। वेद, शास्त्र, पुराण, स्मृति आदि में धर्म, कर्म, ज्ञान, वैराग्य आदि जो उपाय लिखे हैं, वे सब इसी स्वरूप की प्राप्ति के निमित्त हैं, इसी स्वरूप के प्राप्त होने से उपासक मुक्त, निश्चल, कृतार्थ और कृतकृत्य कहलाते हैं।

दूसरी व्यूहउपासना-दूसरा स्वरूप व्यूह है। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये चार व्यूह संसार को पालन करते हैं और फिर नाश करदेते हैं.

तिसरी विभूति उपासना-विभूति अर्थात् अवतार ये अधर्म का दूर करने, वेद मर्यादा को दृढ करने और अपने भक्तों की रक्षा करने के लिये होते हैं। अवतार दो प्रकार के हैं एक मुख्य अवतार रामकृष्ण इत्यादि हैं, इनका शरीर माया का रचा हुआ नहीं होता। ये माया के अधीश हैं और वेद के पाँच उपनिषद् रामतापिनी, गोपालतापिनी आदि उनकी उपासना प्रतिपादन करने वाले प्रसिद्ध हैं परंन्तु यह सिद्धान्त श्री संप्रदाय वालों का है। जो लोग राम, कृष्ण नृसिंह आदि के उपासक हैं, वे अपने इष्ट को अवतारी और दूसरों का अवतार मानते हैं। दूसरा गौण अवतार दो प्रकार का है। एक तो संसारी लोगों के अज्ञान दूर करने के निमित्त और धर्म की प्रवृत्ति के निमित्त होता है, जैसे व्यास पृथु आदि। दूसरे परशुराम, शिव, गणेश आदि। अवतारों का कुछ वर्णन दूसरी निष्ठा में कर आया हूं।

चौथी अन्तर्यामी उपासना-अन्तर्यामी की उपासना दो प्रकार की है, एक निरूप की अर्थात् ज्ञानानन्द, अलख, अविनाशी, निरीह, निरञ्जन, निर्गुण ब्रह्म; सर्व व्यापक है, जैसे तिलों और काष्ठ के सब अंगों में तेल और अग्नि व्याप्त है परंतु दिखायी नहीं देते, इसी प्रकार वह सर्वत्र व्यापक है और उनकी सत्ता और प्रेरणा से माया अनन्त ब्रह्मांडों को रचती है। दूसरी रूपवान की अर्थात्

सगुण स्वरूप शंख चक्रधारी माया से निर्लेप वासुदेव स्वरूप है और यह ही भगवद्विग्रह संकर्षण आदि व्यूह स्वरूप के साथ, जिनका वर्णन दूसरी उपासना में किया है गणना किया जाता है। अर्थात् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध।

पाँचवी उपासना। पांचवीं अर्चा स्वरूप की उपासना है। इसका वर्णन आठवीं अर्चा निष्ठा मे हो चुका है।

यहां तक भगवत् के स्वरूप का वर्णन किया माया का स्वरूप यह है। माया जड़ अर्थात् अचल है और परतंत्र हैं, स्वतंत्र किसी प्रकार का कुछ पराक्रम नहीं रखती, भगवत् की प्रेरणा से सब कार्य करती है, किसी २ का यह कथन है कि माया अनादि शान्त है अर्थात् यह मालूम नहीं हो सक्ता कि कब से है, कब उत्पन्न हुई परंतु उसका अन्त होजाता है। जब वेद शास्त्र के अनुसार माया से छुटने के निमित्त प्रयत्न किया जाता है, तब वह दूर होजाती है। दूसरों का कथन है कि माया नित्य है, भगवत् की शक्ति है, सदा रहेगी, उसका दूर होना असंभव है परंतु जब वेद के अनुसार यह जीव भगवत् आराधन करता है, तो भगवत् की कृपा से वह माया उस जीवपर जैसा औरोंपर अपना बल करती है, वैसा नहीं कर सक्ती। मूल अर्थ दोनों का एक है, केवल शब्द मात्र का भेद है, यह माया दो प्रकार की है, एक विद्या जिससे अनन्त ब्रह्मांड और ब्रह्मांडों के स्वामी उत्पन्न होते हैं। दूसरी अविद्या है, जिसके जाल में यह जीव फंसा हुआ है।

जीव का स्वरूप कुछ नाम निष्ठा के अन्त में कह आया हूं, इसको आत्मा भी कहते हैं। जीव भगवत् का अंश है, निर्विकार, प्रकाशमान, ज्ञानानन्द स्वरूप है और भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल में विद्यमान् है परंतु भगवत् के सदृश अनन्त नहीं है भगवत् शेषी हैं और जीव शेष है, यह भेद माया का किया हुआ है और कल्पित है। कोई ऐसा मानते हैं कि जीव पांच प्रकार के हैं, प्रथम नित्य हैं जिनका जन्म दूसरे जीवों के समान संसार में नहीं होता, जैसे विष्वक्सेन, गरुड़ आदि दूसरे मुक्त हैं, जो भगवत् आराधन और ज्ञान के अवलम्ब से मुक्त हो गये हैं। तीसरे केवल हैं, जो अपने तप और पुरुषार्थ से विदेह मुक्त होने वाले हैं, अर्थात् जीवन्मुक्त हैं, चौथे मुमुक्षु हैं, जो मुक्त होना चाहते हैं, ये दो प्रकार के हैं, एकतो वे जिन्होंने नवधा भक्ति द्वारा भगवच्चरणों में चित्त लगाया है, दूसरे शरणागत हैं, जिनको भक्ति इत्यादि से कुछ सम्बन्ध नहीं है, केवल सब प्रकार से भगवच्चरणों की शरण लेकर अपने को सब कार्यों में और साधनों में परतंत्र समझ कर अपना सब बोझ भार भगवत् पर डालदिया है। इनके दो प्रकार हैं, एक तृप्त हैं जो भगवत् सेवा भजन आदि की इच्छा रखते हैं, दूसरे आर्त्त हैं, जो भगवत् के भजन सेवन में रत हैं, पांचवें बद्ध हैं, जो संसार के विषय भोग के स्वाद में भ्रमित और लीन रहकर सदा आवागमन की फांसी में फंसे रहते हैं और फंसे रहेंगे। कोई २ पांच प्रकार के बदले तीन प्रकार के ही मानते हैं, एक विमुक्त हैं जो संसार से छूट गये हैं, दूसरे मुमुक्षु हैं, जो छूटने के उपाय में लग रहे हैं, तीसरे विषयी हैं जो संसार के सुख स्वाद में भूले हुए हैं। विचार कर देखा जाय, तो दोनों के मत में कुछ भेद नहीं है, तीन प्रकार का पांच में

समावेश है। यहां तक जीव के स्वरूप का वर्णन किया।

ज्ञान के निर्णय में कोई ऐसा कहते हैं कि ईश्वर, माया और जीव के स्वरूप को जानकर ईश्वर जीव को एक समझ कर अभ्यास वैराग्य के बल से चित्त की वृत्ति दृढ़ होजाय और हृदय से द्वैतका भाव मिट जाय, इस का नाम ज्ञान है। इसी को विज्ञान कहते हैं। तात्पर्य इस का यह है कि भीतर बाहर जहां तक मन पहुंचे, वह सब भगवत् निर्विकार ज्ञानानन्द स्वरूप हैं सिवाय भगवत् के न कभी कुछ हुआ है, न होगा और यह जो संसार दृष्टि में आता है, वह स्वप्न मात्र है, वास्तव में सब ईश्वर है। किसी २ का यह वचन है कि जहां तक इन्द्रिय और मन से देखने में आता है, वह सब भगवद्रूप है और यह जीव भगवत् का दास है। कोई ऐसे हैं कि जिनको न पहिले वचन से कुछ प्रयोजन है, न दूसरे से वे ऐसा कहते हैं कि अपने सच्चे प्यारे के ध्यान में चित्त की वृत्ति ऐसी मग्न हो जाय कि सिवाय उस रूप अनूप के और कुछ किंचित् भी भीतर बाहर शरीर में शेष न रहे, वह ही ज्ञान है, वह ही वैराग्य है, वह ही भक्ति है और वह ही शरणागति है, हे मंसाराम! इस प्रकार के थोड़े २ अन्तर से मतान्तरों के बहुत प्रकारवचन हैं परन्तु विचार करने से सब का परिणाम और सिद्धान्त एक निकल आता है क्योंकि जिसने जीव ईश्वर को एक जाना, उसकी दृष्टि में सिवाय एक ईश्वर के दूसरा न रहा और जिसने अपने को दास और भगवत् को स्वामी समझा तो वह भी भगवद्रूप की माधुरी में मग्न हो जाने के समय अपने को भूल जायगा और सिवाय भगवद्रूप के उसकी दृष्टि में कुछ नहीं आवेगा। यह बात सब के अनुभव में आयी होगी कि किसी समय किसी काम में चित्त की वृत्ति ऐसी एकाग्र हो जाती है कि अपने पराये की और बदन तक की भी कुछ सुध नहीं रहती, तो जब भगवत् के रूप और माधुरी का चिन्तवन होगा और आनन्द का लाभ होगा, तो सिवाय उस रूप के दूसरा कैसे शेष रह सका है? नहीं रह सका।

हे मंसाराम! मुख्य अभिप्राय सब शास्त्रों का यह है कि जैसे बने वैसे यह जीव भगवत् के चरणों में लगे। ऐसा करने से लोक परलोक के सब मनोरथ और ज्ञान वैराग्य आदि आप से आप प्राप्त हो जाते हैं। गीता में भगवान् का वचन है कि मुझ को एक जान कर, पृथक जान कर अथवा बहुत प्रकार का जान कर जो मेरा भजन सेवन करते हैं, उनको मैं निश्चय प्राप्त होता हूं क्योंकि मैं सब ओर से प्राप्त हूं। हे मंसाराम! जब तक भगवच्चरणों में मन नहीं लगता तब तक सब चतुराई मूर्खता है और सब जानकारी पर धूल है।

एक भक्त इस प्रकार भगवान् से प्रार्थना करता है—हे कृष्ण स्वामी! मेरा मन सब भ्रम को छोड़ कर आपके चरणकमलों में लग जाय और आपके इस रूप का सर्वदा ध्यान किया करे। श्रीभक्तवत्सल भगवान् का मुखारविन्द प्रसन्न है, कमल के समान नेत्र हैं, नेत्रों का मध्य भाग रक्त कमल के सदृश रक्तवर्ण है, नील कमल के पात के समान श्याम वर्ण है, हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं, शरीर पर धारण किया हुआ रेशमी वस्त्र खिले कमल के समान पीत वर्ण का है, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह है, ग्रीवा में

कौस्तुभ मणी शोभा दे रहा है, मधुपान से मत्त हुए भ्रमरों की मधुर झंकार से युक्त बनमाला गले में शोभा दे रही है. बनमाला के नीचे बहुमूल्य हार और तोड़े हैं, हाथों में कड़े हैं, शिर पर सुवर्ण रत्न जटित मुकुट है, भुजाओं में बाजुबन्द शोभित हैं, पैरों में नूपुर शोभा दे रहे हैं, कटिभाग रत्नजटित तागड़ी की लड़ों से अत्यन्त ही शोभित हो रहा है, भक्तों का हृदयकमल भगवान् का आसन है, परम सुन्दर और शान्त रूप से भक्तों की ओर अत्यन्त ही मनोहर दृष्टि से देखते हुए भक्तों के नेत्र तथा मन के आनन्द को बढ़ा रहा है, सब लोक भगवान् को नमस्कार कर रहे हैं; किशोर अवस्था है, भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के कार्य में तत्पर हैं, भगवान् की कीर्ति वर्णन करने योग्य और पुण्यकारिणी है। जो भगवान् नल युधिष्ठिरादि पुण्यश्लोकों से भी अधिक यशस्वी हैं, ऐसे भगवान् मेरे परम प्रेम का विषय हैं। और सर्वदा मेरी हृदय रूप गुहा में विराजमान् रह कर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मत्सरादि सकल शत्रुओं को मेरे मन से भगा कर मेरी रक्षा करें, रक्षा करें, रक्षा करें!

कथा वशिष्ठ जी की।

ब्रह्मा जी के दश पुत्रों में से एक वशिष्ठ जी हैं। यह परम भगवद्भक्त और सब विद्याओं के आचार्य हैं। ज्योतिष विद्या, चिकित्सा और संगीत आदि उनकी बनायी हुई संहिता विख्यात हैं। वृद्ध पुरुषोंने इनकी संहिता को प्रमाण मान कर नई परिपाटी की रचना की है। परन्तु विशेष करके उनका अधिकार धर्मशास्त्र, भक्ति और ज्ञानशास्त्र में अधिक है। इन्होंने अन्तरिक्ष में निरालम्ब स्थिति करके भगवत् का भजन और ध्यान किया और फिर दूसरे ब्रह्मांड में जाकर वहाँ की ब्रह्माणी की सहाय के निमित्त ब्रह्मा से विज्ञापन किया। धर्म की प्रवृत्ति के हेतु यह तीन स्वरूप धारण करके एक स्वरूप से ब्रह्मलोक में, दूसरे से धर्मराज की सभा में और तीसरे से सप्त ऋषीश्वरों में रहते हैं। इनके प्रताप को देख कर राजा विश्वामित्र ने अपना राज्य छोड़ दिया था और भगवद्भक्ति अंगीकार की थी। इनमें तितिक्षा इतनी थी कि जब इन्होंने दन्दशूकी गौ विश्वामित्र को नहीं दी और उनको ब्रह्म ऋषि नहीं कहा, तो विश्वामित्र ने इनके सौ पुत्रों का एक राक्षस के हाथों से वध करा दिया परन्तु इन्होंने समर्थ होकर भी उनसे बदला नहीं लिया। इनका वचन ब्रह्मा, विष्णु, शिव, और समस्त जगत् को मान्य था। विश्वामित्र ने ब्राह्मण होने के लिये बहुत काल तक तप किया परन्तु जब तक वशिष्ठ जी ने उनको ब्राह्मण न कहा तब तक किसी ने उनको ब्राह्मण न कहा और जब वशिष्ठ जी ने अपने मुख से उनको ब्राह्मण कहा, तब उनकी गणना ब्राह्मणों में हुई, भगवच्चरणों में उनकी ऐसी प्रीती थी कि जब इन्होंने यह बात सुनी कि पूर्ण सच्चिदानन्दघन का सूर्य वंश में रामावतार होगा, तो इनको बड़ी प्रसन्नता हुई और इन्होंने सूर्यवंश की पुरोहिताई अंगीकार करली। जब भगवत् अवतार हुआ तो कभी वात्सल्य भाव में और कभी चराचर में व्यापक देख कर प्रेम के रंग में रंग जाते थे।

कुः—ज्ञानी ध्यानी भक्तवर, ब्रह्मापुत्र वशिष्ठ।
क्षमा तितिक्षा धैर्य में, सब पुत्रों से श्रेष्ठ॥
सब पुत्रों से श्रेष्ठ, गाधि सुत सौ सुत मारे।
लिया न उनसे वैर, ब्रह्म ऋषि उन्हें पुकारे॥

सुना राम अवतार, बात ब्रह्मा की मानी।
करी राम की भक्ति, भक्तवर ध्यानी ज्ञानी॥

कथा विश्वामित्र की।

विश्वामित्र पहले क्षत्रिय राजा गाधि के पुत्र थे। जब वशिष्ठ जी की नन्दनी गौ से इनकी प्रबल सेना हार गयी और इन्होंने भगवद्भक्ति के कारण राजाओं से ब्राह्मणों का प्रताप अधिक देखा तो राज्य को छोड़ कर भगवत् के भजन में लग गये और कई लाख वर्ष तक ऐसा घोर तप किया कि क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये। भगवद्भक्ति और तप से यह ऐसा बल और प्रताप रखते थे कि दूसरा ब्रह्मांड उत्पन्न कर सके थे। एक बार इन्होंने ब्रह्मा से क्रोधित होकर नवीन ब्रह्मांड रचने का विचार किया और कई प्रकार के जीव उत्पन्न किये। ब्रह्मा और सब देवताओं की प्रार्थना से नवीन ब्रह्मांड की रचना करने से उपरम हुए। जो वस्तु इन्हों ने उत्पन्न की थीं वे अब तक हैं। त्रिशंकु नामक अयोध्या के राजा को इन्होंने शरीर सहित स्वर्ग में भेज दिया था। जब इन्द्र ने उसको पृथिवी पर गिरा दिया, तो उसने आकाश से पुकार की विश्वामित्र जी ने अपने तपोबल से उसको पृथिवी पर गिरने न दिया। अब तक वह निराधार अंतरिक्ष में विद्यमान है। पश्चात् विश्वामित्र ने इन्द्र को स्वर्ग से निकालने की इच्छा की परन्तु देवताओं की प्रार्थना से दया करके उसको वहां ही रहने दिया। विश्वामित्र जी के इस प्रकार के बहुत से चरित्र हैं।

भगवत् के निष्काम भक्त और कर्मशास्त्र के प्रवर्तक यह ऐसे थे कि एकबार बहुत काल तक वर्षा न होने से अकाल पड़ा, कुछ भोजन को न मिला। बहुत दिन पीछे एक चांडाल से कुछ अभक्ष्य वस्तु मिली और असमय में खाद्य समझ कर ले आये स्नान सन्ध्यादि करके चाहते थे कि भगव दर्पण और पितृ कर्म करके भोजन करें परन्तु भगवान को अपने भक्तों को ऐसा दुष्ट भोजन खाने देना अंगीकार न हुआ, इसलिये जब विश्वामित्र ने अर्पण करने के लिये भगवत् का ध्यान किया तो समाधि लग गया और ऐसी वृष्टि हुई कि सब वन और खेत भान्ति२ के फल और धान्य से हरित हो गये और इस मांस के भी कटहल और बड़हल के वृक्ष जम आये। जब विश्वामित्र जी समाधि से जागे तो उन्हों ने भगवान को दंडवत् किया और स्तुति करके फलादिक से क्षुधा को शान्त किया। श्रीरघुनन्दन स्वामी के चरण कमलों में जो इनकी प्रीति थी उसका वर्णन तो हो ही नहीं सका क्योंकि भाव और भक्ति के वशीभूत होकर भगवान् आप उनके साथ गये और उनके यज्ञ की रक्षा करके अपने रूप अनूप अमृत से उनको तृप्त और कृतार्थ किया।

कं०—राजा विश्वामित्र जी, भक्तों माँही भूप।
क्षत्रिय से ब्राह्मण भये, कीन्हे चरित अनूप॥
कीन्हे चरित अनूप, भक्ष्य बहुकाल न पाया।
खाना चाहा मांस, ईशने जल बर्षाया॥
लाये लक्ष्मण राम, दैत्य दल भय से भाजा।
पूर्ण कराया यज्ञ, आप कौशलपर राजा॥

साधु कौन है और साधुसंग किसको मिलता है।

(ले० विद्या भूषण पं० मोहन शर्मा, विशारद, सम्पादक–"मोहिनी"।)

इस महा प्रशान्त भवार्णव से जहाज में पार होने के लिये यदि कोई सच्चा साधन है, तो वह साधु सत्सङ्ग है। हमारे ऋषि, मुनि, महात्मा आदि सबने एक स्वर होकर साधु सङ्ग की बड़ी महिमा गाई है। और सांसारिक जीवों की मुक्ति के लिये यही साधु सत्सङ्ग एक मात्र कारण बतलाया है। परन्तु इस जगतीतल में साधु पुरुष कौन हैं, उनके क्या लक्षण हैं। हमारे हिन्दू ग्रन्थों में कौन से साधु महात्माओं के सत्सङ्ग का माहात्म्य वर्णन किया गया है; इस घोर कलिकाल में हम भट के हुये जीवों में प्रत्येक के लिये आज यह जानने समझने और इन बातों पर बारम्बार विवेचना करने की परम आवश्यकता है। प्रसंगवशात् यहां हम इन्हीं बातों का सूक्ष्म रूप में दिग्दर्शन करना चाहते हैं।

योगेश्वर भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश करते हुये सन्त महात्माओं के सम्बन्ध में कहा है:–कि हे अर्जुन! मिट्टी के ढेले स्वर्ण और पत्थर इत्यादि जड़ पदार्थों को एक समान समझना इतना कठिन नहीं, जितना कि चेतन पदार्थों में समता भाव रखना कठिन है। इसलिये "समत्वं योग उच्यते" इस नियमानुसार यद्यपि मिट्टी के ढेले सुवर्ण और पत्थर इत्यादि जड़ पदार्थों को एक समान समझने वाला पुरुष भी पूर्ण सिद्ध महात्मा है, परन्तु इससे भी अधिक युक्त अर्थात् सर्व प्रकार से परिपूर्ण समाहित, बढ़ी चढ़ी अवस्था वाला, विशेष सिद्ध महात्मा वह पुरुष है; जो अपने शुभचिन्तकों, मित्रों शत्रुओं, उदासीनों, दोनों पक्षों का भला चाहने वालों, द्वेष किये जाने योग्य अथवा अप्रिय पुरुषों बन्धुजनों तथा साधुओं और पापियों से भी समबुद्धि रखता है। तात्पर्य यह कि शत्रु मित्र के प्रति जो वैर और प्रीति रहित है अथवा समचित्त वाला है, वही वन्दनीय महात्मा है।

जो सारी कामनाओं से इच्छा शून्य है- निस्पृह है किसी से कुछ भी पाने की इच्छा नहीं रखता, धन धान्य, स्त्री पुरुष आदि के विद्यमान् रहते हुए उनमें जिसकी कोई आसक्ति नहीं होती, जिसने अपनी इन्द्रिय समूह का भली भांति दमन किया है अथवा इन्द्रियजीत है, जिसका मन कभी चलायमान नहीं होता, जिसने अपने मन को अपने वशम्वद कर लिया है, जो जगन्नियन्ता जगदीश का अनन्य भक्त है, जिसने समस्त कामनायें पूर्ण रीति से मन के द्वारा त्याग कर दी हैं, इष्ट वस्तु की प्राप्ति और नाश दोनों ही जिसके नज़दीक एक बराबर हैं अर्थात् जो हर्ष और विषाद से रहित है वही सच्चा साधु है।

दुःसङ्ग में जो कभी भूल कर भी नहीं फटकता, जो अपने समस्त कार्यों का सम्यक् रूप से निर्वाह करता है, जो सदैव" मैं क्या हूं" और यह विशाल विश्व क्या है" इन पवित्र विचारों में

लीन रहता है, जो योग शास्त्र में वर्णित यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, और समाधि प्रभृति गुणों से सम्पन्न है, जिसके चिन्ह प्रगट नहीं होते, वरन् आचरण प्रगट होते हैं, जिसने चुगलपन, मत्सरता, अभिमान, अहङ्कार, अश्रद्धा, कठोरता, मन का शोक, निन्दा, दम्भ, लोभ, मोह, क्रोध इन सबका परित्याग कर दिया है वही वास्तविक योगी, संत और महात्मा है।

वस्तुतः ऐसे ही आचरणों और शुभ लक्षणों वाले तपोनिष्ठ साधु पुरुष के सत्संङ्ग से मनुष्य में भगवद् कथा सुनने की रुचि उत्पन्न होती है। और यह रुचि ही मनुष्यमात्र के शून्य हृदय में भगवद्भक्ति का शङ्ख फूकने वाली है। इसके बाद भक्ति से निर्मल ज्ञान की उत्पत्ति और ज्ञान से मनुष्य परम मुक्ति पद को प्राप्त होता है। भगवद्भक्त साधु पुरुष का सत्सङ्ग होने से श्रवण में रुचि उत्पन्न होने पर मन मानस में भक्ति का अंकुर फूटता है, विरक्ति उत्पन्न होती है और विषयों की आसक्ति टूटती है। श्रवण से चित्त शुद्ध होता है, बुद्धि दृढ़ता पकड़ती है और अभिमान की उपाधि टूट जाती है। श्रवण से निश्चय आता है, ममता मिटती है और अन्तः करण में समाधान होता है। श्रवण से आशङ्का दूर होती है, संशय टूटता है और सद्गुण आते हैं। श्रवण से मनोनिग्रह होता है और देह बुद्धि का बन्धन टूटता है और सद्गुण आते हैं। श्रवण से मैंपन दूर होता है, संदेह नहीं आता और अनेक प्रकार के विघ्न भस्मसात् हो जाते हैं। श्रवण से कार्य सिद्धि होती है, समाधि लगती है और पूर्ण परम शान्ति प्राप्त होती है। सन्त समागम करके अध्यात्म श्रवण करने से वृत्ति तल्लीन हो जाती है। प्रबोध बढ़ता है, विवेक जागता है और मन भगवान् में लगता है। श्रवण से कुसङ्ग छूटता है, काम वासनाएं क्षीण होती हैं, भवभय का नाश होता है, स्फूर्ति का प्रकाश होता है और निश्चयात्मक सद्वस्तु का भास होता है। स्वामी समर्थ रामदास जी कहते हैं कि श्रवण के समान और कोई उत्तम साधन नहीं है, क्योंकि उससे सब कुछ हो सक्ता है। जिस प्रकार अनन्त वनस्पतियां एक ही जल से बढ़ती हैं और एक ही रस से सब जीवों की उत्पत्ति है, तथा जैसे सम्पूर्ण जीव एक ही पृथ्वि, एक ही सूर्य और एक ही वायु पर अवलम्बित हैं, और जिस भांति सब जीवों के चतुर्दिग् आकाश एक ही है तथा जैसे सम्पूर्ण जीव एक ही परब्रह्म परमात्मा में लीन रहते हैं, उसी भाँति प्राणि मात्र के लिये श्रवण ही एक अच्छा साधन है।

परन्तु अब प्रश्न यह होगा, कि इस प्रकार का साधु सत्सङ्ग और उससे ऐसी भगवद् चर्चा श्रवण का परम सौभाग्य इस कलिकाल के जीवों में से ऐसे कितनों को प्राप्त होता है? वैसे यह तो नहीं कहा जा सकता कि इस कलिकाल में पूर्वोल्लिखित लक्षण सम्पन्न और पूर्ण अधिकारी सन्त महात्माओं का मिलना एकदम दुर्लभ है अथवा ऐसे सच्चे साधुजन कहीं मिल ही नहीं सकते। क्योंकि, खोज, अनुसंधान और जिज्ञासा का बड़ा महत्व है—सच्ची तलाश करने से खोजक और जिज्ञासु को सब कुछ मिलता है। बहुत से लौकिक कार्यों के लिये भले ही मनुष्य अपने भाग्यविधान की दुहाई देता रहे परन्तु पारलौकिक गति सुधारने को उसे हर अवस्था मे पुरुषार्थ ही करना होगा।

पुरुषार्थ से मनुष्य में पात्रता आती है और पात्रता से शनैः २ अभीष्ट प्राप्ति का मार्ग उन्मुक्त होजाता है। अथवा सत्पात्र की मनोवांछित वस्तु उसमें प्रबल इच्छा शक्ति जाग्रत होने पर उसके पास आपही आपहुंचती है। फिर भी एक दृष्टि में, हर एक व्यक्ति साधु महात्मा और साधुसङ्ग को रात दिन खोजता नहीं बैठ सक्ता सारांश यह कि जिनको इस प्रकार के ज्ञानी गुरु और सन्त जन महात्माओं से साक्षात्कार नहीं हुआ और न इस भाँति के पवित्र सत्सङ्ग की ही प्राप्ति हो सकती है, आखिर उनको क्या करना चाहिये? इस दशा में उनका कर्त्तव्य क्या है?

साधक को भवसागर से उत्तीर्ण होने के लिये हमारे शास्त्रों में मुख्यतः दो उपायों का निर्देश किया गया है। (१) साधु सत्सङ्ग और (२) सत्-शास्त्र का स्वाध्याय। जिस अवस्था में साधु सत्संग की प्राप्ति दुर्लभ हो उस समय सत् शास्त्र के स्वाध्याय से बढ़कर और कोई आनन्द नहीं है। ऐसे अवसर पर सत् शास्त्र द्वारा ही सत्संग के स्थान की पूर्ति करनी चाहिये। योगवाशिष्ठादि ग्रन्थों में स्पष्ट आज्ञा है साधक मात्र को उचित है कि वह प्रतिदिन बिना नागा किसी सत् शास्त्र का श्रवण और मनन अवश्य करे।' वास्तव में जो लोग इस शास्त्राज्ञा के प्रति सच्चे श्रद्धालु होकर इसे बराबर आचरण में लाते हैं, उन्हें ही इसका ठीक २ अनुभव होता है, कि शास्त्रों का नियमित स्वाध्याय ज्ञान और भक्ति पथ में कहाँ तक सहायक है। सत् शास्त्रों में पारायण के योग्य गीता, श्रीमद्भागवत् देवीभागवत्, दुर्गासप्तती, रामायण, अध्यात्म रामायण, योगवाशिष्ठ, महा-रामायण, महाभारत और जो विशेष अधिकारी जन हैं उनके लिये उपनिषद् आदि यही सब प्रधानतः उल्लेखनीय हैं।

साधु सत्संग और शास्त्र के स्वाध्याय से जब तक साधक में एक निष्ठा नहीं आती तब तक श्री भगवान् के राज्य में प्रवेश लाभ नहीं हो सक्ता। एक निष्ठा शून्य साधना तो "तुषाणाम् कण्डनं यथा" मात्र है। एक निष्ठ होने से मन मानस में एकमात्र ईश्वर का ही निवास होगा और अन्य सब वस्तुएं सर्वथा उपेक्षणीय हो जाएँगी। हमने किसी २ साधक को यह कहते हुये सुना है कि यदि हमारा कर्म हमें कहीं भी खींच करले जाता है तो उस पर हमारा क्या अधिकार है। इसके उत्तर में हमारा कहना है कि, अनादि सञ्चित कर्म संस्कार के साथ घोर संग्राम करना ही साधना है। अनादि सञ्चित कर्म संस्कार ही प्रकृति है। प्रकृति जिस प्रकार मनुष्य के साथ में है पुरुष भी उसी प्रकार साथ में रहता है। पुरुष के स्थानीय होते हैं इष्ट मन्त्र और गुरु! इन्हीं की सहायता लेकर कर्म संस्कार पर वीरता पूर्वक जय प्राप्त करना चाहिये। जो लोग इस प्रकार आचरण करते हैं वही साधक श्रेणी में लिये जाने योग्य हैं और जो ऐसा करने की इच्छा नहीं रखते उनसे सांसारिक भोग विलास और लम्पटता ही बन आती है, उन्हें साधक श्रेणी प्राप्त नहीं होती।

हृदयोद्गार

(रचयिता श्रीमती ब्रजकुमारी 'विहुषी' आश्रम)

देव दयामय ! हे जग पालक ! हे प्रेमाकर ! करुणागार ।
भटक रहा हूं जीवन पथ में सुध न लोगे क्या मेरी वार ॥
कुत्सित पीड़ित भग्न हृदय हूं जन्म २ का ठुकराया ।
लुटे हुयों की श्रेणी में मैं भाग्य हीन हो बैठाया ॥
आशाओं अरमानों को मैं सागर मांह बहा आया ।
चिन्ता की यह बनाके चिता प्रभुवर ! मैं आज जला आया ॥
चिर संचित पूंजी को मैंने तेरे आगे लाय लुटाया ।
देख दुखी जन नाम के नाते मुझ पै कुछ तो कर दाया ॥
शून्य हृदय हो पीड़ित हूं फिर तेरे द्वार मैं आया ।
हाय ! अकिंचन की झोली में शेष न अब कुछ रह पाया ॥
अब मदिरा पी मतवाली झपकी झूम २ कर घेर रही ।
चढ़ी खुमारी सिर पै मेरे जादू सा कुछ फेर रही ॥
मैं मस्त हुआ छक प्याले पी बेहोशी का वैभव पाया ।
राम २ "ब्रज" पीव रटै अब तन्मय हो हुई भाव नशाया ॥

महात्माओं को लक्षण ।

बुद्धिराम नामक एक उदार, सदाचारी, गुणवान, व्यवहारकुशल और पढ़े लिखे सज्जन थे। बहुत बड़े आदमी नहीं थे तो घर में किसी प्रकार की कमी भी न थी. नौकर की जगह नौकर, वाहन की जगह वाहन, मुनीम गुमास्तों की जगह मुनीम गुमास्ते अर्थात् सब सामान पर्याप्त था। व्यापार भी ठीक ठीक चलता था। देखने में सब प्रकार से सुखी मालुम होते थे। परिवार भी एक सुखी गृहस्थ का जैसा होना चाहिए वैसा था। कहीं जाते आते समय रास्ते में लंगड़े लूले. अन्धे, बधिर और कोढ़ी आदि अपाहिज मिलते उनको यथा शक्ति दान भी दिया करते किसी से घृणा द्वेष नहीं किया करते थे। लेकिन उदार होने पर भी उन्हें हट्टे कट्टे युवा भिखमंगे और घर घर फिरने वाले गेरुआ वस्त्रधारी सन्यासियों से न मालुम क्यों चिड़ थी। एक बार उनके जी में पहाड़ों की सैर करने की आई और घर से निकल कर चलते चलते बीच में एक दो दिन के लिए हरिद्वार ठहर गये। वहां शाम को हर की पैड़ी के सामने चबूतरे पर गंगा किनारे घूमते हुए वहां का आनन्द ले रहे थे। दृश्य बड़ा ही मनोहर था। दूर पर बड़े बड़े पर्वतों की गगन स्पर्शी चोटियां बड़ी ही सुन्दर लगती थी मानों कोई रावण कुम्भकरण जैसे विशाल काय राक्षस रात दिवस खड़े हुए तपस्या करते हों। गंगा पार वन की हरियाली नेत्रों को अपूर्व शीतलता प्रदान कर रही थी। घाट पर भी कहीं कोई साधु कई भक्तों के बीच बैठे उन्हें उपदेश दे रहे हैं तो कहीं नाच गान हो रहा है, कहीं स्त्रियें बैठी भजन गारही हैं कोई गंगाजी की पूजा में ही मस्त हैं, कोई बैठे हुए मौज से चटपटे रसों का आस्वादन कर रहे हैं तो कोई बैठे मच्छ कच्छ को ही भोजन करा रहे हैं और कोई बैठे गप्प में ही मौज उड़ा रहे हैं तो कोई ध्यानावस्थित हो आत्मानन्द का उपभोग कर रहे हैं। इस प्रकार सभी अपने अपने भावों और रुचि के अनुसार आनन्द ले रहे हैं और हमारे लाला बुद्धिराम जी भी गंभीर भाव से घूमते हुए मन के आनन्द का थोड़ा थोड़ा रसास्वाद लेकर प्रसन्न होरहे थे इस प्रकार घूमते घूमते उनकी दृष्टि एक

अकेली घूमती हुई तेजस्वी मूर्ति पर पड़ी। न जाने क्यों उसकी दृष्टि वहीं ठहर गई और वे भी कुछ दूर दूर रह कर उनके पीछे पीछे घूमने लगे। एक ही व्यक्ति को अपने पीछे पीछे कई चक्कर लगाने के बाद भी पीछा न छोड़ने के कारण उस तेजस्वी मूर्ति ने घूमकर उसे पूछा कि "भाई! तुम इतनी देर से मेरे पीछे क्यों घूम रहे हो! क्या तुम कोई सी० आई० डी० हो? मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि मैं किसी बम पार्टी का आदमी नहीं हूं। तुम मेरा पीछा करके व्यर्थ कष्ट न उठाओ, यहां तुम्हारे कुछ नहीं हाथ लगने का।" इतना सुन कर बुद्धिराम बोले-"महाराज! मैं कोई सी० आई० डी० नहीं हूं। न मालुम मेरा मन बिना जान पहचान के भी आपकी तरफ क्यों आकर्षित हो रहा है। इसी लिए मैं मन्त्र मुग्धकी तरह आपके पीछे फिर रहा हूं।" इस प्रकार बातें करते करते दोनों का आपस में एक दूसरे से कुछ परिचय होगया तब वे दोनों कहीं एकान्त की तरफ जाकर बैठ गये और इस प्रकार बातें करने लगे।

महात्मा-भाई! संसार में सभी भगवान् के रूप हैं इसलिए किसी से घृणा नहीं करनी चाहिए।

बुद्धिराम- महाराज! मुझे और तो किसी से घृणा नहीं होती लेकिन हट्टे कट्टे भिखमंगे और घर घर घूमने वाली साधुओं से चिड़ होगई। यह मेरे बस की बात भी नहीं है। आप ही बताइये ऐसे को भीख देने से क्या पुण्य होता है? क्या घर घर फिरने वाले भी कोई महात्मा होते हैं?

महात्मा- भाई! ऐसे को भीख देने में लाभ है या हानि सो तो परमात्मा जाने, लेकिन उनसे घृणा करने में प्रत्यक्ष हानि है। उनके प्रति घृणा का भाव रखने से उनको देखते ही भीतर में एक प्रकार की ज्वालासी जलने लगती है जिससे इहलौकिक और पारलौकिक दोनों हानि होती हैं। और इसके सिवाय भीख किसी को भी देने में क्या हानि है सो हमारी समझ में नहीं आती भूखे को रोटी दोगे तो वह उसे खायगा और नंगे को कपड़े दोगे तो वह उसे पहिनेगा। हां, अनर्थ की जड़ तो पैसा है सो पैसा दान दोगे तो उससे तो भलाई की सम्भावना कम ही है। आज कल दुनियां में दान देने वालों में पैसे वाले ज्यादा हैं अन्न वस्त्र वाले कम हैं। और पैसे वालों से इतनी तकलीफ भी नहीं उठाई जाती कि पैसों के बदले में अन्न वस्त्र मंगा कर उनका दान करें। वे स्वयं धन के अभिमान में अनेक अनर्थ करते हैं और औरों से भी उसके द्वारा अनेक बुराई कराने के कारण होते हैं फिर दोष बिचारे दान लेने वालों के मत्थे मंढते हैं। कोई आकर क्षुधा तृप्ति के लिये अन्न की याचना करता है तो उसे पैसे दे देते हैं कि लेकर खालेना या बहुत किया तो नौकर को साथ भेज दिया कि इसे खाने को दिला देना, इससे भीख लेने वाले के मन में लोभ पैदा होजाता है कि पेट कहीं दूसरी जगह भर लिया जायगा, ये पैसे तो ऐसे ही रख लें। इस विचार से वह नौकर से मिल कर कुछ उसको घूंस देकर कुछ स्वयं ले लेता है। इससे अनेक प्रकार की बुराइयां फैल जाती हैं। इसलिये याचक को दान जरूर देना चाहिये लेकिन पैसा बहुत सोच समझ कर देना चाहिए। इस पैसे से होने वाली बुराई में प्रमाद वश दाता भी कारण होने से उसे भी कुछ बुराई का फल जरूर भोगना पड़ता होगा। अब रही घर घर घूमने वाले साधुओं की बात वे

सब वास्तव में महात्मा हैं या नहीं सो यातो वेखुद जाने या परमात्मा जाने। हमारे में तो इतनी शक्ति है नहीं जो उनकी परीक्षा कर के देख लें। हां, तुम जरूर बुद्धिराम हो, अपनी बुद्धि से उनकी परीक्षा कर सकते हो। देखो, भगवान ने श्रीमद्भागवत में साधु महात्माओं के लक्षण भक्तराज उद्धवजी के प्रति इस प्रकार कहे हैं:-

"जो पराये दुःख को न सह सके, किसी भी प्राणी से द्वेष न करे, बदला लेने की शक्ति रहते हुए भी क्षमावान हो, जो सत्यवादी, ईर्ष्या रहित, सुख दुःख में सम और यथा शक्ति सब का उपकार करने वाला हो, विषयों से जिसका मन क्षोभित न हो जो जितेन्द्रिय, कोमल चित्त, सदाचारी, अपरिग्रही, लौकिक सुख के लिये प्रयत्न न करने वाला, मिताहारी, शान्त, स्वधर्म में स्थिर, मेरे अर्थात् भगवान के आश्रय वाला, मननशील, सावधान, निर्विकारी, कष्ट के समय में भी धैर्य रखने वाला, भूख प्यास शोक मोह जरा और मृत्यु को अपने स्वरूप में न मानने वाला मान की इच्छा न रखने वाला, दूसरों को मान देने वाला, चतुर, किसी को न ठगने वाला करुणा से ही सर्व प्रवृत्ति करने वाला और सम्यक् रीति से ज्ञानवान हो ऐसा पुरुष साधु कहलाता है। मेरे अर्थात् भगवान के स्वरूप रूपी वेद में कहे हुए स्वधर्म पालन से अन्तःकरण की शुद्धि होने आदिक गुण हैं और न हीं पालने में दोष है ऐसे अच्छे प्रकार जानने पर भी 'ये धर्म प्रभु के ध्यान में विक्षेप करने वाले हैं और मैं नहीं पालूंगा तो भी ये सब धर्म भक्ति से ही सिद्ध हो जायंगे' ऐसे दृढ़ निश्चय से अथवा भक्ति की दृढ़ता के हेतु निज के धर्म का अधिकार हक जाने से उन सब कर्मों का त्याग करके जो पुरुष भगवान का भजन करे वह ही उत्तम साधु मानने योग्य है। देश कालादिक के परिच्छेद से रहित, सर्व के आत्मा और सच्चिदानन्द रूप भगवान को जान कर और फिर मननादिक से विशेष जान कर जो पुरुष दृढ़ और एकी भाव से उनको भजते हैं वे ही उत्तम साधु हैं।"

इसके सिवाय रामायण में भी भगवान ने भरत जी के प्रति सन्तो के लक्षण कहे हैं सो भी मैं तुमको सुनाता हूं:-

"विषय अलम्पट शील गुनाकर।
पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥
सम अभूत रिपु विमद विरागी।
लोभामर्ष हरष भय त्यागी॥
कोमल चित्त दीनन पर दाया।
मन बच क्रम मम भक्ति अमाया॥
सब हीं मान प्रद आप अमानी।
भरत! प्राण सम मम ते प्रानी॥
बिगत काम मम नाम परायन।
शान्त बिरक्त बिदित मुदितायन॥
सीतलता सरलता मयत्री।
द्विज-पद प्रीति धरम जनयत्री॥
ये सब लछन बसहिं जासु उर।
जानहु तात सन्त सन्तत फुर॥
सम दम नियम नीति नहीं डोलहिं।
परुष बचन कबहुं नहीं बोलहिं॥
निन्दा स्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्राण प्रिय, गुण मन्दिर सुख पुंज॥

जो इन लक्षणों से युक्त हो वही सच्चा साधु है। फिर चाहे वह एकान्त गुफा में बैठने वाला

हो चाहे इधर उधर भ्रमण करने वाला। और भाई! वास्तव में तो उपर्युक्त सद्गुणों से युक्त देहाभिमान को छोड़ने वाला सन्त ही भगवान को प्राप्त होता है।

केवल घर, परिवार, शिखा, सूत्र, आहार, व्यवहार आदि छोड़ने से कोई लाभ नहीं होता जब तक कि मनुष्य उपरोक्त गुणों को ग्रहण न करे। इसके सिवाय एक बात यह भी है कि सच्चे सन्तों को यह परवाह तो होती ही नहीं कि दुनियाँ हमें अच्छा समझें, इस हालत में जिस बात को दुनियाँ वाले अच्छा समझते हैं उसको करने की गरज नहीं होती उनके अन्दर से जो प्रेरणा होती है वही वे करते हैं दुनियां चाहे उसे अच्छा समझे या बुरा। एक बहुत गूढ़ बात मैं तुझे और बताता हूं, देख, सच्चे सन्त प्रतिष्ठा को सूकरी विष्टा तुल्य समझते हैं इसलिए वे प्रायः ऐसे छिपे वेश में घूमा करते हैं कि उन्हें कोई पहिचान न सके। इसलिए निरादर किसी का भी नहीं करना चाहिए क्योंकि न मालुम महात्मा पुरुष किस वेश में आ निकले और हमारे द्वारा उनका अपमान हो जाय तो बड़ा भारी अनर्थ हो जाय। भगवान् ने गीता में कहा है 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतं' अर्थात् ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है। अतः ऐसे महात्माओं को भगवत् स्वरूप समझ कर ही उनके प्रति श्रद्धा और आदर सत्कार करना चाहिये।

आदर सब का कीजिये, जासों मिलना होय।
ना जाने किस वेष में, नारायण ही होय॥

महात्मा के ऐसे गूढ़ शब्दों को सुन कर विचारे बुद्धिराम की बुद्धि विरम्भ होगई, और तब से उसने किसी के प्रति भी घृणा करनी या किसी का भी अनादर करना सदा के लिए त्याग दिया और उसकी पहाड़ी यात्रा भी सफल होगई।

मेरे श्याम

(रचयिता रमाशंकर मिश्र श्रीपति)

ऐसे तौ न कारे ब्रजचन्द कोटि काम वारे,
श्रीपति सलोने राधिका के नैन तारे हैं।
दृग अमियारे मृदु बैन बनमाल धारे,
ह्वै हैं कूबरी के जौन कामरी सँवारे हैं।
देवकी के प्यारे वसुदेव के दुलारे नारे,
मेरे नन्द-लाल यशुदा के प्रान प्यारे हैं।
मोर पंख धारे कटि काछनी संवारे वीर!
देखे कहूं मेरे श्याम पीत पट धारे हैं॥

२

केसी कंस मारे शंख चूड़हिं संहारे जिन,
धेनुक पछारे तीन कान्ह कोऊ न्यारे हैं।
मेरे श्याम बारे वै न एते मतवारे वीर,
रास रचि डारे बंसी अधर संवारे हैं।
टेर सुनि हारे दौरि आवत उघारे पाँव,
दीनन पियारे वै तौ अधम उधारे हैं।
नख गिरि धारे ब्रज बूड़त उबारे वीर!
ब्रज बनितान जापै रीझि प्रान वारे हैं॥

मियां शाह हुसैन

(ले० श्री गुरा दित्ता खन्ना)

वीर प्रसविनी वीरभूमि पंजाब में इस नाम के एक बड़े प्रसिद्ध फ़कीर हो गये हैं। यह महानुभाव यद्यपि थे तो मुसलमान ही, पर थे बड़े नेक पाक और ईश्वर के प्यारे पंजाब में आज कल मियां शाह हुसैन की बाणी बड़े चाव से पढ़ी और सुनी जाती है तथा जहाँ पर सन्त महात्माओं का प्रसंग चलता है वहां इन का जिकर जरूर आता है।

मियाँ शाह हुसैन को आम लोग माधोलाल हुसैन के नाम से पुकारते हैं। इस का कारण तो आगे चल कर बतलाया जायगा, पर यहां केवल इतना जरूर कहे देते हैं कि हुसैन तो इनका अपना नाम है और माधोलाल है इनके एक प्यारे दोस्त का

मियां शाहहुसैन का जन्म लाहौर में हिजरी सन १४५१ में हुआ था। इनके पिता का नाम शेख असमान था शेख असमान साहब के पिता शायद हिन्दू ही से मुसलमान हुए थे, इसलिये शेख साहब में और हमारे चरितनायक हुसैन साहब में अभी काफी हिन्दुत्व था।

मियाँ शाह हुसैन के सम्बन्ध में अनेक चमत्कारपूर्ण बातें पढ़ने और सुनने में आई हैं, जोकि प्रायः सिद्ध पुरुषों में हुआ ही करती हैं और कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि हम उन्हें मिथ्या और कपोल कल्पित मानें जब कि यह एक पहुंचे हुए महात्मा तथा कट्टरता और घृणामय भाव से रहित थे।

कहते हैं कि एक बार मियां शाहहुसैन साहब ईश्वरीय रचना देखते हुए लाहौर के बाजारों में घूम रहे थे। कभी किसी मयखाने के आगे खड़े हो जाते थे और कभी किसी कंजर खाने के आगे कभी रोने लग जाते थे और कभी गाने, कभी दूध पीते नजर आते थे और कभी शराब पीते। अकस्मात शाह साहब की दृष्टि एक हिन्दु लड़के पर पड़ी, जोकि बड़ा ही सुन्दर और अभी १५-१६ वर्ष का ही था। लड़का जाति का तो ब्राह्मण था पर अन्य वृत्ति आदि कुछ न होने के कारण अपने माता पिता की आज्ञा से उबले हुए चने बेच रहा था शाह साहब ने उसे पास बुलाया और अपनी आकर्षण शक्ति से तत्काल उस का मन अपनी ओर खेंच कर कहा कि फेंक दे चने और आ हमारे साथ, कुछ घड़ी आनन्द से बैठ कर गुजारें। लड़के ने चने फेंक दिये और शाहब के साथ हो लिया। जब रात हुई और घर को जाने लगा तो उसे विचार हुआ कि चने फेंक दिये हैं, घर जाने पर माता पिता न जाने क्या कहेंगे। लड़के को उदास देख कर शाह सहाब ने जिस थाली में चने रख कर लड़का लाया था उसमें कुछ कोयले रख दिये और बोले कि इसे घर में लेजा लड़का बड़ा हैरान हुआ कि यह क्या बातहै। मा कोयले देख कर क्या कहेगी, पर आखिर वह कोयले लेकर घर को चल ही पड़ा। लड़के का नाम था माधोलाल।

माधोलाल जब घर में पहुंचा और कोयलों का थाल उसने अपनी मा के आगे रखा और पैसा एक भी न रखा तो वह बड़ी क्रुद्ध हुई और लगी माधोलाल को मारने, मार पीट खाकर माधोलाल

ने मा को सारी बात कह सुनाई और यह भी कहा कि इन कोयलों को किसी मटकी में डाल कर ढांप रखियो और फिर कल देखना कि क्या बनता है ? यह कोयले साईं साहब ने बड़ी कृपा पूर्वक दिये हैं। माने वैसा ही किया और जब अगले दिन मटकी का मुँह उघार कर देखा तो उसमें कोयलों की बजाय रुपये भरे हुए पाये। यह देख कर उसे बड़ा आनन्द हुआ और उसने अपने पति को भी बड़ी प्रसन्नता से मटकी दिखाते हुए सारी बात कह सुनाई। फलतः माधोलाल के अतिरिक्त उसके माता पिता भी शाहहुसैन के मुरीद हो गये।

अब माधोलाल रोज शाह साहब के पास जाता और तमाम काम काज छोड़ कर सारा दिन उसके पास बैठा रहता। और यदि किसी दिन किसी कारण वश वह नहीं जाता तो शाह साहब स्वयं उसके घर में आते और जैसे भी होता खुल कर उसका पियार करते। धीरे धीरे यह बात बदनामी का रुख धारण कर गई और लोग इस सच्ची मुहब्बत को, इस पवित्र प्रेम को झूठी मुहब्बत और अपवित्र प्रेम कहने लग गये। यद्यपि माधोलाल के माता पिता को कभी ऐसा विचार नहीं हुआ था और वह अपने पुत्र पर फ़कीर की सच्ची मुहब्बत और पाक निगाह ही समझते थे पर लोकापवाद के कारण वह भी अब तंग अवश्य आगये थे और चाहने लग गये थे कि जैसे भी हो अब यह फ़कीर हमारे लड़के का पीछा छोड़ दे। इसके लिये पहिले तो उन्हों ने अपने लड़के को ही समझाना बुझाना आरम्भ किया कि देख इस तरह फ़कीरों के पीछे लगने से तेरा विवाह आदि कभी न होगा और तू संसार में बहुत दुःख पायगा" जब ऐसा कि यह नहीं मानता तो उसे हरिद्वार में ले जाने का निश्चय किया और हरिद्वार चलने के लिये उससे कहा। वह बोला अच्छा मैं साईं साहब से पूछ लूं। जब साईं साहब से इस ने पूछा तो वह बोले कि हम तुम्हें हरिद्वार में नहीं जाने देना चाहते, इसलिये तू मत जा और अपने माता पिता को भेज दे। माधोलाल बोला–'निर्जला एकादशी का दिन समीप है और वह उसी दिन के स्नानार्थ जा रहे हैं सो आप मुझे आज्ञा दीजिये जिससे मैं भी उनके साथ स्नान कर आऊं। शाह हुसैन बोले–तू कुछ फ़िकर न कर हम तुझे ठीक समय पर गंगा का स्नान करा देंगे। उन्हें जाने दे। माधोलाल मान गया और उसने घर जा कर अपने माता पिता से स्पष्ट कह दिया कि मैं तुम्हारे साथ हरिद्वार न जाऊंगा आप जाइये, मैं स्वयं समय पर आपके पास पहुंच जाऊंगा। माता पिता ने बहुतेरा समझाया पर वह न माना। निदान माता पिता अकेले ही हरिद्वार को चल दिये जिससे प्रथम तो निर्जला एकादशी का स्नान हो जाय और दूसरे उतनी देर तक लोगों के मुंह से अपनी बदनामी सुनने से बचे रहें।

इधर जब निर्जला एकादशी का दिन आया तो माधोलाल ने शाह हुसैन से कहा कि आज पर्व का दिन है। आपने कहा था कि पर्व वाले दिन स्नान कराएंगे, सो अब कराइये। शाह हुसैन ने कहा कि "मींच आंखें"। ज्योंही माधोलाल ने आंखें मूंदी कि वह हरिद्वार में पहुंच गया। यह देख कर माधोलाल और उसके माता पिता को बड़ा आश्चर्य और आनन्द हुआ। सबने प्रेम पूर्वक गंगा का स्नान किया और फिर घर को आगए।

घर में आकर फिर माधोलाल और शाह हुसैन का वही हाल और वही लोकापवाद बल्कि पहिले से भी खूब बढ़ चढ़ कर। फलतः माधोलाल के माता पिता बहुत दुःखी हो गये और एक दिन उन्होंने माधोलाल को बलात् घर में रोक लिया और शाह साहब के पास नहीं जाने दिया। एक दिन बीत गया दो दिन बीत गये। जब माधोलाल शाह साहब के पास नहीं आया तो शाह साहब बड़े व्याकुल हो गये और स्वयं चल कर माधोलाल के घर में आए। नीचे से आवाज दी–"माधो लाल! ऊपर से माधोलाल की माता ने जवाब दिया-"माधोलाल घर पर नहीं है।" शाह साहब यह कह कर निराश लौट गये कि "नहीं होगा"। शाह साहब का जाना था कि माधोलाल के कलेजे में बड़ी सख्त दर्द उठ खड़ी हुई और वह बात की बात में खतम हो गया। अर्थात् वह मर गया। यह देख कर उसके माता पिता रोने पीटने लगे और फिर तख्ता बना अपने सम्बन्धियों की सहायता से उसे श्मशान भूमि में ले गये। वहां जा कर वह माधोलाल को अभी दफ्नाना चाहते ही थे कि ऊपर से शाह हुसैन साहब आ गये और बोले कि "यह क्या माजरा है। माधोलाल के माता पिता ने कहा कि माधोलाल मर गया है। शाह साहब बोले बहुत अच्छा आप इसे फूकिये मत और लाइये मुझे दे दीजिये। भला माधोलाल के माता पिता कब यह मान सकते थे उन्हों ने ऐसा करने से साफ इन्कार कर दिया। पर शाह साहब न माने और अपनी जिद पर बराबर अड़े रहे। यह देख कर किसी ने माधोलाल के पिता को समझाया कि तू कह कि यदि आप दो हजार रुपये देदें तो मैं अपने पुत्र की लाश आपको दे दूंगा। न इस समय यह दो हज़ार देगा और न लाश लेगा। फिर आप शान्ति से इसे जला डालना। माधोलाल के पिता ने ऐसा ही किया, उसने शाह-साहब से कह दिया कि यदि आप इसी समय दो हजार रुपये देदें तो मैं माधोलाल की लाश आपको दे दूंगा। शाह साहब बोले बहुत अच्छा। अभी वह कह ही रहे थे कि इतने में दो घुड़ सवार श्मशान भूमि में आगये और शाह साहब के आगे घोड़ों से उतर कर खड़े हो गये तथा एक एक हजार रुपये की एक एक थैली शाह साहब के आगे रख कर बड़े अदब से बोले कि "शाह साहब इस तुच्छ भेंट को स्वीकार कीजिये। आपकी कृपा से हमारे मनोरथ पूर्ण हो गये हैं। शाह साहब ने वह रकम सहर्ष उनसे लेली और उसी समय माधोलाल के पिता को देकर लाश अपने अधिकार में करली फिर लाश से बोले कि" उठ माधोलाल! देख कितनी देर से हम तेरी इन्तजार में खड़े हैं। कहते हैं कि सुनते ही माधोलाल उठ कर बैठ गया और खुशी खुशी शाह हुसैन के साथ हो लिया।

बस तब से ही शाह हुसैन का नाम माधोलाल हुसैन भी पड़ गया और लोग इस नाम से भी शाह साहब को पुकारने लगे।

शाह हुसैन को सब से पहिले लोग लाल हुसैन या दट्टाहुसैन के नाम से भी पुकारा करते थे। "दट्टा" राजपूतों की एक जाति का नाम है, जिसमें कि शाह साहब जन्मे। और फिर शाह हुसैन पड़ा, और यही संसार में प्रसिद्ध हुआ। शाह हुसैन नाम किस ने रक्खा। लाहौर के तत्कालीन सुप्रसिद्ध छज्जुरामजी ने। कहते हैं कि शाहो

लाल को पुनः जीवित कर लेने के पीछे तुरन्त ही शाह साहब अपने मित्र छज्जू भक्त जी के पास गये क्योंकि प्रायः उनका उन्हीं के यहां बैठना उठना था। छज्जू भक्त जी ने हुसैन साहब को देखते ही कहा-"आईये शाह हुसैन जी" इस से पहिले वह भी सर्वसाधारण की तरह लाल हुसैन जी ही कहा करते थे। हुसैन साहब बोले-यह क्या नया नाम रख दिया? छज्जू जी बोले-अब आप "शाह" हो गये हैं, क्योंकि परमात्मा की बराबरी करने लग गये हैं। आपने माधो-लाल को जिवाया है न! हुसैन साहब इस पर बहुत लज्जित हुए और अपने किये पर पश्चात्ताप करने लगे। फिर छज्जूराम जी बोले-दर्पण में से देखिये अपना मूंह ज्यों ही शाह हुसैन जी ने मुँह देखा कि मुँह एक दम काल कलूट सा हुआ पाया। मानों किसी ने स्याही मुंह पर पोत दी हो। शाह साहब को बड़ी हैरानी हुई कि यह क्या हो गया मेरा मुंह ऐसा काला किस ने कर दिया है। फिर उन्होंने छज्जू भक्त से पूछा कि "भक्त जी यह क्या बात है मेरा मूंह इतना काला कैसे हो गया है? छज्जू भक्त हंस कर बोले-"शाह साहब आप नहीं जानते इस का क्या कारण है। आप की करनी थी सो सब नष्ट हो गई और आपने विधाता के लेख को मेट दिया है सो ऐसा तो होना ही था। शाह साहब बोले अब क्या किया जाय। छज्जू जी ने पानी का एक कुण्ड सा दिखा कर कहा कि इसमें से मुंह धो लीजिये। यदि परमात्मा ने चाहा तो आप का चेहरा फिर पहिले जैसा हो जायगा। शाह साहब ने वैसा ही किया, पर किया जैसे मुसलमान वजू करने के समय करते हैं यानि दोनों हाथों में पानी लेकर मुंह पर फेर लिया। फल यह हुआ कि सारा मूंह तो साफ हो गया लेकिन दोनों हाथों के बीच में जो एक बड़ा सा छिद्र रह जाता है, वह स्थान वैसे का वैसा ही रह गया। ज्यों ही फिर दो बारा शाह साहब ने दर्पण देखा तो माथे पर एक काला टीका सा नज़र आया। उन्होंने बड़े आश्चर्य से छज्जू भक्त से पूछा कि यह क्या हो गया। छज्जू भक्त बोले यह आपके मुंह धोने के तरीके का फल है। शाह साहब बोले तो फिर क्या दोबार मुँह धोलूं। छज्जू जी बोले-धो लीजिये लेकिन बनेगा कुछ नहीं, क्योंकि पर-मात्मा को यही मंजूर है कि आप के माथे पर कालिश का टीका अवश्य बना रहे। छज्जू भक्त की यह युक्ति युक्त बात सुन कर साहब चुप हो गये और फिर कभी ऐसा न करने का निश्चय धार बैठे। कुण्ड क्या था, सन्तों के पांव धोने का एक छोटा सा हौज था। खैर

शाह हुसैन जी के चमत्कार पूर्ण कार्यों की और भी कई बातें पढ़ने और सुनने में आती हैं। कहते हैं कि एक बार कोई खरबूजे बेचने वाला अपनी दुकान पर इन्हें बैठा कर आप कहीं चला गया। यह पीछे आवाज देने लग गये कि जो टके टके खरबूजा और साथ में पुत्र भी। कहते हैं कि जिस जिसने खरबूजा लिया उस उस के घर में पुत्र हो गया। पर यह बात माधोलाल को जीवित करने से पहिले की है। इसी प्रकार की और भी कई एक बातें हैं,

---

महात्मा तरुवर ।

[ले० श्री ला० हरिकृष्ण जी गुप्त]

हे तरुवर देव! तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। सचमुच तुम सच्चे महात्मा हो।

तुम्हारे रोम २ में परोपकार रम रहा है। तुम्हारी नस नस में पर हित प्रवाहित हो रहा है। तुम्हारी रग रग परमार्थ रंग से रंगी है। तुम्हारी क्षण क्षण जन्म से मृत्यु पर्यन्त दूसरों के लिये है।

कोई तुम्हारे साथ भलाई करे अथवा बुराई तुम्हें तो सभी का भला करना।

टहनी काटने वाले, फूल नोचने वाले और फल तोड़ने वाले के हित के लिये तुम्हारा हृदय उतना ही आकुल-व्याकुल होता है जितना जल चढ़ाने वाले के लिये।

तुम्हारा हृदय मन्दिर सब के लिये समान रूप से खुला है। उसे व्यक्ति जाति अथवा देश विशेष का पक्षपात नहीं है। तुम्हारा सब कुछ सब कोई के लिये है।

तुम विश्वात्मा महात्मा हो।

× × ×

कैसी मनोहर होती है तुम्हारी बाल्यावस्था। उस समय तुम्हारा नाम होता है 'नवजात पौदा' "अहा! कितना प्यारा नाम है।

उस समय का तुम्हारा हरा भरा लुभावना लहलहाना निरख किस का हृदय हर्ष-हिलोरित नहीं होता। किस की आँखें शीतल नहीं होती।

बाल्यावस्था बीत जाती है। यौवनागमन होता है। तुम तीव्रता से विकास की ओर अग्रसर होते हो। ज्यों २ तुम विकसित होते हो, तुम्हारी परोपकारभावना भी विकसित होती है।

अब वह समय आजाता है जब भगवान् भुवन भास्कर के तीक्ष्ण ताप से तपित गहरी प्यास से पीड़ित, क्लान्त पथिक तुम्हारी काया की छाया में विश्राम ले अपनी क्लान्तता दूर करता है। तुम्हारे हरे २ पत्तों के सरस स्पर्श से शीतल-हरा पवन के सुखद झकोरों को सेवन कर अपना पसीना हरा करता है और तुम्हारे सुस्वाद और रसयुक्त फलों से अपनी भूख प्यास निवृत्त करता है।

तुम्हारा अतिथि-सत्कार उस क्लान्त पथिक को हर्ष-चकित कर देता है। उस की काया में कृतज्ञता की करंट तेजी से दौड़ने लगती है और उस की वाणी सहसा जगमगा पड़ती है।

"धन्य हो तुम, महात्मा तरुवर!'

तुम सुनते हो और झूमते हो सात्विक आनन्द में मस्त हो।

परोपकार-पथ के आदरणीय पथिक तरुवर दिन भर तो तुम अपने प्रिय कार्य में रत रहते ही हो, रात को भी चैन नहीं। खुले दिल से अपनी काया और काया की छाया पशु पक्षियों को शय्या-हित अर्पण कर देते हो। स्वयं अपने पर कितना कष्ट झेल कर कितना सुख पहुंचाते हो दूसरों को। कौन तुलना में ठहरेगा तुम्हारी महात्मा तरुवर!

× × ×

धीरे २ यौवन समाप्त हो जाता है। जरा का आगमन होता है। तुम्हारी शक्तियां छीजने लगती हैं लेकिन परोपकार प्रियता में कमी नहीं आती। तुम अपने जीवन पर्यन्त परोपकार किये ही जाते हो।

लोग जवानी में जमा करते हैं बुढ़ापे के लिये और बुढ़ापे में तो दोनों हाथों से पीछे को ही डालते हैं। लेकिन तुम यह सब नहीं जानते। तुम इन बातोंमें बालक की भाँति अनजान हो। तुम्हारा तो सदा सर्वदा सब कुछ सब कोई के लिये है।

× × ×

जरा मृत्यु का निमंत्रण है।

तुम्हारे अंग प्रत्यंग सूखने लगते हैं। पत्ते छीजने लगते हैं। शाखायें गिरने लगती है। हरियाली आंखे फेरने लगती है। अन्त को जीवन समाप्त हो जाता है। प्राण-पखेरु उड़ जाता है। सब कुछ चला जाता है। रह जाता है केवल तुम्हारा मृत देह ढांचा सूखा ठंठ। लेकिनः- ……

मृत्यु पश्चात् तुम्हारी परोपकार-प्रियता के और भी स्पष्ट दर्शन होते हैं।

जिस प्रकार वीर क्षत्रियों के सिर कटे धड़ और अधिक तेजी से युद्ध करते हैं, उसी प्रकार तुम्हारा मृत देह-तुम्हारा ढांचा-तुम्हारी परोपकार प्रियता का और भी स्पष्ट दर्शन कराता है।

कौन नहीं जानता काष्ठ हमारे लिये कितना उपयोगी है। और वह काष्ठ है क्या।

और भी आगे काष्ट कोयले में परिवर्तित हो जाता है और कोयला राख में। लेकिन परोपकार प्रियताअब भी वैसी ही रहती है।

किसे नहीं मालुम, कोयले और राख से हमारे जीवन का कितना सम्बन्ध है।

× × × ×

अन्त में हेतरुवर देव! अब हम तुम्हारा गुण गान कहाँ तक करें। और इस की हम में सामर्थ्य ही कहां है। तुम्हारी काया का कण कण तुम्हारे सहृदय जीवन का क्षण क्षण परोपकारमय है।। तुम सच्चे और पूरे परोपकारी हो, महात्मा हो।

तुम्हें बारम्बार नमस्कार, महात्मा तरुवर!

काम

तोटक छन्द

(१)

बहु योनिन जन्म अनेक लहे, तहँ भोगत भोग अनेक रहे।
दिनही दिन भोगत आयु गई, अबलौं नहि चाह निवृत्त भई॥

(२)

हम जानत भोगन भोगत हैं, पर भोगत भोग हमें नित हैं।
बहुबार हमें बिनु सत्व करें, बिनु तेज करें पुनि प्राण हरें॥

(३)

हम कूकर ज्यों बश काम सदा, धन धर्म गुमावत हौं बिपदा।
सब वृद्ध भये इक काम युवा, अब देखत दीखत नित्य नवा॥

(४)

नहि काम! तुझे नर जीत सकें, सबहूं करि खंड हराय सकें।
जिन जीतत तू सब खंड सही, तुहि जीतत जो नर मरद वही॥

(५)

शिव मार तुझे करि भस्म दिया, फिर व्यापक हो, वरदानदिया
फिर मोहित तू करदीन उन्हें, तब मूल मिटावत शांति तिन्हें

(६)

शठ काम ! तुझे विधि जन्म दिया, तिन मोहि दिया अपमान किया
अशरीर बली जब है इतना, सशरीर न होत बली कितना ॥

(७)

शठ रे ! बड़ जादु भरा तुझमें, क्षणमोहि बनावत अंध हमें ।
बड़ शूरन कायर दीन करे, बलवानन कूं बल हीन करे ॥

(८)

नहिं जीतन हार तुझे जगमें, अति बंधक तू शुभ मारग में ।
सुर दानव ऊपर चोट करे । वन वासि मुनि तप भ्रष्ट करे ॥

(९)

शठ काम ! तुही शम नाशक है, अघ वर्धक दुःख विकासक है
जहँ होवत तू तहं राम कहां, सुख शान्ति न आवन देत तहां

(१०)

तव शक्ति महा भव कारक है, शम हारक जीवन मारक है ।
परमात्म अबोध अभेद बिना, तव नाशन होय कभी मदना

(११)

रतिनाथ ! तुझे जिन जीतलिया, कृत कृत्य हुये सब काम किया
तम मोह मिटा भव पीर गई, भय शोक हटा सुख शान्ति भई

(स्वा० भोले बाबा जी)

तुलना ।

प्राचीन युग ।

१. बालक प्रातःकाल उठकर मातापिता गुरु जनों आदि के चरणों में शीश नवाया करते तथा भक्ति भाव से उनकी सेवा करते ।

२. प्रातः काल संध्यावन्दन, वेद स्तोत्रादि का पाठ होता था ।

३. पहिले घरको धूप, दीपादि से सौरभ मय और पवित्र बनाया जाता था ।

४. जगह जगह हवन यज्ञादि देखने में आते थे ।

५. यज्ञों के पवित्र धूम से अमृतमय संजीवनी वृष्टि होती थी ।

६. अमृतमय नियमित वृष्टि से अमृतमय अन्न ओषधियें उपजती थीं ।

वर्त्तमान युग ।

१. आज कल मातापिता गुरु जनादि के चरणों में शीश नवाते लज्जा आती है । सेवा तो दूर रही गुरु को उल्टा नौकर समझा जाता है ।

२. अब दुनिया की निंदा स्तुति से भरे हुये समाचार पत्रों का पाठ होता है ।

३. इस जमाने में बीड़ी सिगरेट आदि के धूयें से दुर्गन्धमय और अपवित्र बनाया जाता है ।

४. जगह जगह कल कारखाने उसकी पूर्ति कर रहे हैं ।

५. फैक्ट्रियों के स्वास्थ्य नाशक अंत धूयें से नाशकारी अग्नि वृष्टि होती है ।

६. अति वृष्टि से महामारी, प्लेग, मलेरियादि सर्वनाशक व्याधियें उत्पन्न होती हैं ।

७. अधिकार अधीनों को रक्षा और पालन के लिये होते थे।

८. ऊंचे से नीचे तक सब अपने वर्ण धर्म पर स्थित थे। यथा–

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।

९. पहिले संसार से विमुखता और ईश्वर की तरफ सन्मुखता ही उन्नति और बुद्धिमानी समझी जाती थी।

१० ब्रह्मचर्य ही सर्वोच्च आदर्श सदाचार माना जाता था।

११. पहिले वैज्ञानिक आविष्कारों से किसी को हानि नहीं होती थी।

१२ वैज्ञानिक उन्नति से शारीरिक, मानसिक, धार्मिक और अध्यात्मिक बल बढ़ाते थे।

१३ विद्या पढ़ने से स्वाभाविक नम्रता आजाती थी।

७. अब अधिकारी अधीनों को कुचलना ही अपना कर्तव्य समझते हैं।

८. अब-विप्र निरक्षर लोलुप कामी,
निराचार शठ वृषली स्वामी।

इसीवास्ते–"परिचर्यात्मकं कर्म, ब्राह्मणस्य स्वभावजम्"। विप्र होन लगे ऐसे नर। पीर, वर्वचि, मिस्सी, नर।
और-शूद्र द्विजन उपदेशहि ज्ञाना। मेलि जनेऊ लेहि कुदाना॥
जे वर्णाधम तेलि कुम्हारा। श्वपच किरात कोल्ह कलवारा॥
नारि मुई ग्रह संपति नासी। मूंड़ मुड़ाय भये सन्यासी॥
ते विप्रन सन पाव पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नशावहिं॥
शूद्र करहिं जप तप व्रत दाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना॥

९. आजकल नास्तिकता और विषय भोगमय जीवन ही उन्नति का चरम सीमा माना जाता है।

१०. अब पुरुषों का तो कहना ही क्या, स्त्रियों में बहु विवाह ही सिद्धान्त माना जाने लगा।

११. अब दूसरे के नशार्थ भी आविष्कार होने लगे।

१२. अब आविष्कार कर्ता के सिवाय प्रायःसभी उससे अपना बल घटा रहे हैं। यथा–हवागाड़ी आदि वाहनों से शारीरिक नाश होता है। हिसाब किताब जोड़ने के यन्त्रों के आविष्कार से अच्छे गणितज्ञ भी उसके वशीभूत हो अपनी बुद्धि से काम लेना छोड़ने लगे। फल प्रत्यक्ष है। अपने स्वार्थ और इन्द्रियों के क्षणिक सुख के लिये वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा न मालूम कितनी हिंसा की जाती है।

१३. अब तो अभिमान में चूर्ण हो, झोपड़ी में रहने वाले गरीब माता पिता का अपमान करने में भी संकोच नहीं होता। बाहर झूठे और स्वार्थी

मित्र मंडली में चाहे कितनी ही सभ्यता और विनय दर्शायी जाती हो लेकिन घर में पांडित्य मद से होश ठिकाने नहीं रहते।

१४. पहिले श्रेष्ठ कौन माना जाता था।

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ,
पदारविंदविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पित मनो वचने हितार्थं,
प्राणंपुनाति सकलं नतु भूरिमानः ॥भा०७-६-१०

एक ओर-धन, अच्छे वंश में जन्म, रूप, तप, पाँडित्य, इंद्रिय पटुता, तेज, बल पौरुष, उद्योग, प्रज्ञा और योग इन बारह प्रकारों के गुणों से युक्त ब्राह्मण पद्मनाभ भगवान् के पादपद्म से पराङ्मुख हो और दूसरी ओर मन, धन, वचन, कर्म और प्राण परमात्मा को अर्पण करने वाला चांडाल हो तो इन दोनों में ब्राह्मण की अपेक्षा चाण्डाल श्रेष्ठ है क्योंकि वह हरि भक्त चांडाल अपने सारे कुलको पवित्र कर देता है परन्तु वह बहुत मान वाला ब्राह्मण नहीं कर सकता।

१५. अब श्रेष्ठ कौन है–

टका कर्म टका धर्मं टका ही परमं पदम्।
यस्यगृहे टकानास्ति न केवल टक टकायते॥
टका करावत मान, सभा मे पंच बनावत।
टका सब गुण की खान, टका बिन मूर्ख कहावत॥
टका बिन मूर्ख कहावत अपमान सभी हैं करते।
बिन टका करे नहीं बात पास बैठन नहीं देते॥
टका इष्ट है आजकल श्रेष्ठ यही बस एक है।
जीवन वृथा इसके बिना यही एक बस टेक है॥

तत्वबोध के साधन।

[ले० श्री महात्मा राम]

वैराग, उपरति ये दोनों तत्वबोध के साधन हैं। जिस अधिकारी पुरुष के अन्दर वैराग, उपरति ये दोनों साधन दृढ़ हैं उस पुरुष के हृदय में तत्वबोध का पूर्ण रूप से प्रकाश होता है। इसलिये तत्वबोध के अधिकारि पुरुष को वैराग और उपरति दोनों साधन ही संपादन करने योग्य हैं। क्योंकि वैराग, उपरति और तत्वबोध यह तीनों परस्पर सहकारी हैं अर्थात् वैराग और उपरति ये दोनों तत्वबोध के सहायक हैं और तत्वबोध वैरागादि दोनों का सहायक है। प्रायः यो तीनों साधन इकट्ठे ही रहते हैं। दैवयोग से किसी स्थल में इनका वियोग भी हो जाता है। जिस पुरुष के अन्दर वैराग, उपरति यह दोनों साधन विद्यमान हैं और तत्वबोध किसी पाप प्रारब्ध के कारण

प्रतिबद्ध होगया है उस पुरुष की मोक्ष तो कदाचित् भी नहीं हो सकती किन्तु उसके तप के प्रभाव से स्वर्गादि उत्तम लोक की प्राप्ति अवश्य होगी इस में संदेह नहीं। और जिस पुरुष के अन्दर गुरु कृपा से तत्वबोध प्राप्त होगया है और वैराग्य उपरति ये दोनों प्रतिरुद्ध हैं। उस के मोक्ष होने में तो कोई संदेह नहीं परन्तु सांसारिक व्यवहार के सम्बन्ध से होने वाला जो दृष्ट दुःख है वह बना रहेगा कारण यह की वैराग्य और उपरति के अभाव से पुरुष की व्यवहार में प्रवृत्ति बनी रहती है। व्यवहार में रजोगुण की अधिकता होती है रजोगुण क्रियाशक्ति वाला है। कर्म की प्रवृत्ति रजो गुण से होती है। जहाँ रजोगुण का संचार होता है वहां विक्षेप शक्ति भी होती है और विक्षेप ही पुरुष के लिये दृष्ट दुःख का हेतु है। वैराग्यादिक तीनों साधनों के विद्यमान् होते हुए पुरुष के लौकिक वैदिक सर्व प्रकार के व्यवहार की स्वतः ही निवृत्ति हो जाती है। इसलिये उसको विक्षेप से होने वाला दृष्ट दुःख भी प्राप्त नहीं होता।

अतः वैराग्य, उपरति, तत्वबोध, इन तीनों के साधन, स्वरूप,फल, और पूर्णता की अवधि जो कि अधिकारी के लिये उपादेय है उनको भिन्न२ करके क्रम से दिखलाते हैं।

वैराग्य का साधन, स्वरूप फल, और अवधि

दोष दृष्टि जिहासा च पुनर्भोगेष्वदीनता।
ब्रह्मलोकस्तृणिकारो वैराग्यस्यावधिर्मता॥

इस लोक के तथा परलोक के विषय भोगों में सातिशयता तथा अनित्यता आदि दोष दृष्टि करना वैराग्य का साधन है। कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है जिससे उत्कृष्ट दूसरा पदार्थ न हो यह सातिशय दोष है। यह ऐसा दोष है कि जिसके कारण मनुष्य की सांसारिक भोगों से कभी तृप्ति ही नहीं होती क्योंकि एक से एक उत्कृष्ट अनेक पदार्थ हैं जिसको सुना या देखा उसी पदार्थ की प्राप्ति की वासना जाग उठी। जितने संसार में पंच भौतिक पदार्थ हैं सब नाशवान् हैं कोई पदार्थ मनुष्य के पास सदा नहीं रहता यह अनित्यता दोष है। जो पदार्थ महाक्लेशों से प्राप्त हो और प्राप्त हुआ भी अपनी रक्षा आदि में अनेक संकट और क्लेशों को उत्पन्न करे, फिर भी जिसका वियोग हो जाय अन्त में जिसका परिणाम दीनता और दुःख से भरा हुआ हो कौन ऐसा विवेक हीन मूढ़ बुद्धि पुरुष होगा जो ऐसे भौतिक पदार्थों में आसक्त होगा। इस प्रकार लोक परलोक के भोग्य पदार्थों में जो अनेक प्रकार के दोष देखता है यह वैराग्य का साधन है। इस दोष दृष्टि से वैराग्य उत्पन्न होता है। जिन लौकिक, पारलौकिक पूर्वोक्त पदार्थों में दोष दृष्टि उत्पन्न हुई है उन समस्त पदार्थों को जो सम्यक् प्रकार से त्यागने की तीव्र इच्छा है वह वैराग्य का स्वरूप है इसी का नाम वैराग्य है। तीव्र इच्छा से त्यक्त किये हुए पदार्थों के पुनः प्राप्त होने पर उन के भोग में जो चित्त की अदीनता है अर्थात् उन पदार्थों की पुनः इच्छा न होना यह वैराग्य का फल है। और सर्व लोकों से उत्कृष्ट जो ब्रह्मलोक का सुख है उसको भी एक तृण के समान तुच्छ जानना यह वैराग्य की पूर्णता की अवधि है॥

तत्वबोध के साधन, स्वरूप, फल और अवधि

आत्मतत्व का श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु द्वारा

श्रवण करना, तथा श्रवण किये हुए अर्थ को अनेक युक्तियों से मनन करना, तथा उसी अर्थ में बुद्धि की वृत्तियों की पुनः २ आवृत्ति रूप निदिध्यास करना यह तीनों तत्वबोध के साधन हैं। मिथ्या देह अहंकारादिकों से जो प्रत्यक आत्मा का विवेचन करना है यह तत्वबोध का स्वरूप है। अहंकारादिकों के साथ आत्मा के तादात्म्य अध्यास रूप ग्रन्थी का जो भेदन हो गया है उस ग्रन्थी का पुनः उदय न होना यह तत्व बोध का फल है। यही तत्वबोध का फल श्रुति में भी कहा है।

भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥

उस परम पुरुष परमात्मा को यह अधिकारी पुरुष जब अपने हृदय में अनुभव करता है तब उसकी आत्मा अनात्मा के सम्बन्ध रूप ग्रन्थि का भेदन हो जाता है। तथा पूर्व अज्ञान की अवस्था में होने वाले अनेक प्रकार के जो संशय विपर्यय थे वह सर्व नष्ट हो जाते हैं, और अज्ञान है आश्रय जिनका ऐसे जो अनेक जन्म मरणादि रूप दुःखों के देने वाले अनेक प्रकार के पुण्य पाप रूप कर्म हैं उन सर्व कर्मों का उस परम तत्व के साक्षात्कार होने पर नाश हो जाता है। और अज्ञानी पुरुषों को जैसे अपने देह में आत्मत्व बुद्धि दृढ़ होती है उसी प्रकार जब परमात्मा में आत्मत्व बुद्धि दृढ़ हो जाती है तब बोध के पूर्णता की अवधि होती है।

उपरति का साधन स्वरूप फल, और पूर्णता की अवधि

यम, नियमादि अष्टाङ्ग योग उपरति का साधन है। मन की सर्व वृत्तियों का निरोध होना उपरति का स्वरूप है। लौकिक वैदिक सर्व प्रकार के व्यवहारों का अभाव होजाना उपरति का फल है। और सुषुप्ति अवस्था के समान सर्व सूक्ष्म स्थूल पदार्थों की विस्मृति हो जाना उपरति की पूर्णता की अवधि है।

नर्वृत्तिः परमा तृप्तिरानन्दोऽनुपमः स्वतः' ।

सर्व संकल्पों की निवृत्ति पूर्वक जो समस्त प्रपंच की विस्मृति है इसी का नाम परम तृप्ति है। जैसे-

यो जागर्ति सुषुप्तिस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते ।
यस्य निर्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥

जो ब्रह्म वेत्ता पुरुष इन्द्रियों के विद्यमान् अर्थात् जाग्रत अवस्था में स्थित हुआ भी सुषुप्ति अवस्था में स्थित कहा जाता है भावार्थ यह है कि जो विद्वान् जाग्रत में नेत्रादि इन्द्रियों के रूपादिक विषयों में आसक्त नहीं होता है वह जागता हुआ भी सुषुप्तिस्थ कहा जाता है और विषयों में इन्द्रियों का ज्ञान तथा प्रवृत्ति रूप जाग्रत नहीं है जिसमें शुभाशुभ वासना रहित शुद्ध हृदय में अखंड एक रस सच्चिदानन्दघन आत्मा का बोध हुआ है उसको ही विद्वान् जीवन्मुक्त कहते हैं।

श्रद्धा और सत्संग की आवश्यकता ।

(ले० भक्तवर श्री जयदयाल जी गोयन्दका)

एक सज्जन ने तीन प्रश्न किये हैं, प्रश्न निम्नलिखित हैं:-

१. माता, पिता, स्त्री, पुत्र की भाँति साकार ईश्वर से प्रत्यक्ष दर्शन कैसे हो सकते हैं ?

२. ईश्वर में तर्क रहित श्रद्धा किस अभ्यास से हो सकती है ?

३. सीयाराम मय सब जग जानी ।
करौं प्रणाम जोरि जुग पानी ॥

ऐसी सच्ची भावना कैसे हो ?

ईश्वर-विषयक ये तीनों ही प्रश्न बड़े महत्व पूर्ण हैं। इनका उत्तर लिखने में मैं अपने को अयोग्य और असमर्थ ही पाता हूं। फिर भी आपके प्रेम के अनुरोध से अपनी साधारण बुद्धि के अनुसार यत्किञ्चित् लिखने का साहस कर रहा हूं।

(१) पहले प्रश्न का साधारण विवेचन गीता-प्रेस से प्रकाशित 'तत्व चिन्तामणि' नामक पुस्तक के लेख संख्या १४, १५, पृष्ठ १७६ एवं १८२ में किया गया है। आप उक्त पुस्तक में देख सकते हैं। उसके सिवा अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ और भी लिख देता हूं।

विशुद्ध प्रेम ही ईश्वरके प्रत्यक्ष दर्शन का प्रधान उपाय है। यह प्रेम किस प्रकार होता है, इसका विवेचन करना चाहिये। सब से प्रथम यह विश्वास होना आवश्यक है कि "ईश्वर है। और वह सर्व शक्तिमान, सर्वान्तर्यामी, परम दयालु, प्रेममय, आनन्द दाता, सर्वत्र साक्षात विराजमान है।" जब तक इस प्रकार का विश्वास नहीं होता तब तक मनुष्य परमात्मा से मिलने का अधिकारी ही नहीं हो सकता। पवित्र अन्तःकरण होने से ही मनुष्य अधिकारी होता है। निष्काम भाव से किये हुए भजन, ध्यान, सेवा, सत्संग मनुष्य के हृदय को पवित्र करते हैं, और पवित्र हृदय होने पर मनुष्य अधिकारी भी बनता है। ईश्वर का ज्ञान भी उसके अधिकारी होने के साथ ही साथ बढ़ता रहता है। इस प्रकार जब मनुष्य को ईश्वर का भली भांति ज्ञान हो जाता है और जब वह ईश्वर को भली भान्ति तत्व से जान लेता है, तब ईश्वर से वह जिस रूप में मिलना चाहता है भगवान् उसी रूप में उसको दर्शन देते हैं। भगवान् सर्व-व्यापी परमात्मा सच्चिदानन्द रूप से तो सर्वदा वर्तमान हैं ही, पर भगवान् के रहस्य का ज्ञाता भगवद्भक्त जिस सगुण साकार चैतन्यमय मूर्ति से अपने प्रेमी भक्त से मिलता एवं बातें करता है इसमें प्रधान कारण प्रेम और पूर्ण विश्वास है जिसको विशुद्ध श्रद्धा भी कहा जा सकता है। इसीकी भगवान् ने गीता में स्थान स्थान पर प्रशंसा की है। जैसे

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥(गी० ६।४७)

सम्पूर्ण योगियों में भी जो श्रद्धावान योगी मुझ में लगे हुए अन्तरात्मा से मुझको निरन्तर

भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥ (गी० १२-२)

मुझ में मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन, ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा में युक्त हुए मुझ सगुण रूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मुझको योगियों में भी अति उत्तम योगी मान्य हैं, अर्थात् उनको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूं।

वह सर्व व्यापी सच्चिदानन्द प्रभु सगुण साकार रूप से किस प्रकार प्रकट होते हैं? इस रहस्य को यथार्थता से तो भगवान का परम श्रद्धालु अनन्य प्रेमी पूर्ण भक्त ही जानता है। क्योंकि यह इतना गम्भीर और रहस्य पूर्ण विषय है कि अन्तःकरण की पवित्रता के बिना साधारण मनुष्यों की तो बुद्धि में ही इसका आना सम्भव नहीं। पर जो उस परमेश्वर का नित्य निरन्तर स्मरण करते हैं उनके लिये यह भगवान का रहस्यपूर्ण तत्व सहज है। यद्यपि साधु, महात्मा और शास्त्रों ने इस तत्व को समझाने के लिये बहुत प्रयत्न किया है, पर करोड़ों में कोई एक विरला ही इस तत्व को समझ पाता है। भगवान ने गीता में कहा है–

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः॥ (गी०७-३)

हजारों मनुष्यों में कोई ही मनुष्य मेरी प्राप्ति के लिये यत्न करता है और उन यत्न करने वाले योगियों में भी कोई ही पुरुष मेरे परायण हुआ मुझको तत्व से जानता है अर्थात् यथार्थ मर्म से जानता है।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥

हे अर्जुन! यह आत्मतत्व बड़ा गहन है। इसलिये कोई महा पुरुष ही इस आत्मा को आश्चर्य की ज्यों देखता है और वैसे ही कोई दूसरा महा पुरुष ही आश्चर्य की ज्यों इसके तत्व को कहता है और दूसरा कोई ही इस आत्मा को आश्चर्य की ज्यों सुनता है और कोई कोई सुन कर भी इस आत्मा को नहीं जानते।

जिस प्रकार चकमक पत्थर लोहे को आकर्षित करता है, फोनोग्राफ की चूड़ी और रेडियें शब्द को आकर्षित करते हैं, एवं कैमरे का प्लेट जैसे आकार को खींचता है उसी प्रकार उस भगवान् का प्रेमी भक्त अपने अनन्य प्रेम के मन्त्र से भगवान् को आकर्षित कर लेता है। कोई देश, कोई वस्तु, कोई जगह भगवान् से खाली नहीं वह सर्वत्र परिपूर्ण रूप से सर्वदा अवस्थित है प्रेमी भक्त उसको जिस मूर्ति में, जिस रूप में और जिस समय प्रकट करना चाहता है वह लीला निकेतन नटवर उस प्रेमी के अनन्य प्रेम से मोहित होकर उसी मूर्ति में, उसी रूप में और उसी समय साक्षात् प्रकट हो जाता है।

ये जितने प्रकार के उदाहरण ऊपर दिये गये हैं। कोई भी जड़ पदार्थ विषयक होने के कारण इस चेतन रूप परमात्मा में पूर्ण रूप से नहीं घट सकते। क्योंकि परमात्मा के सदृश कोई वस्तु है ही नहीं जिसका उदाहरण देकर उस परमेश्वर के विषय को समझाया जा सके।

संसार में सभी मनुष्य सुख चाहते हैं। सुख से या जिससे सुख मिलने की आशा रहती है उससे प्रेम करते हैं। इसलिये जो मनुष्य भगवान्

को परम सुख स्वरूप और एक मात्र सुखप्रद समझ लेता है। उससे बढ़कर या उसके समान आनन्द-प्रद एवं आनन्द स्वरूप किसी वस्तुको भी नहीं समझता, एवं उस पर जिसको पूर्ण विश्वास हो जाता है वह पुरुष ईश्वर को छोड़ और किसी से प्रेम नहीं कर सकता। समस्त संसार में जहां सुख और आनन्द प्रतीत होता है, वह उस आनन्दमय परमात्मा के आनन्द का आभास मात्र ही है। वह क्षणिक अल्प और अनित्य है। परमेश्वर अनन्त, नित्य, पूर्ण चेतन और आनन्दघन है। इसलिये उस नित्य विज्ञानानन्द घन परमात्मा के साथ किसी सांसारिक आनन्द की तुलना नहीं की जा सकती। भजन, ध्यान, सेवा, सत्संग आदि से पवित्र अन्तःकरण होने के साथ ही साथ उपर्युक्त प्रकार के ज्ञान रूपी सूर्य का प्रकाश मनुष्य के हृदयाकाश में चमकने लगता है। बतलाइये: जो इस प्रकार उस परमानन्द के वास्तविक तत्व को समझलेता है वह कैसे इस सांसारिक तुच्छ विषय जन्म नाशवान् अनित्य सुख में फँस सकता है? इसलिये मनुष्य को परमेश्वर में अनन्य प्रेम होने के लिये भजन, ध्यान, सेवा, सत्संग, सदाचार आदि की पूर्ण चेष्टा करनी चाहिए।

२-उस परम प्यारे परमात्मा की मोहनी मूर्ति का साक्षात् दर्शन करने वाले एवं उसके तत्व को भली भाँति जानने वाले पुरुषों द्वारा ईश्वर के गुण, प्रेम और प्रभाव की बातों को प्रेम से सुनने एवं समझने से ईश्वर में तर्क रहित विशुद्ध श्रद्धा उत्पन्न होती है। यदि ऐसे महात्माओं से मिलना न हो तो प्रेम और श्रद्धा से उस परमेश्वर की प्राप्ति का प्रयत्न करने वाले साधकों को सत्संग करना चाहिये, एवं उनसे ईश्वर विषयक गुण प्रेम और प्रभाव की चर्चा करनी चाहिये। ऐसा करने से भी भगवान् में श्रद्धा और भक्ति बढ़ती है। यदि इस प्रकार के उच्च श्रेणी के साधक का संग भी न मिले तो मनुष्य को जिनमें ईश्वर के प्रेम-प्रभाव गुण और तत्व की बातों का वर्णन हो एवं जो ईश्वर या महापुरुषों द्वारा रचे हुए हों ऐसे शास्त्रों का विचार पूर्वक प्रेम से अध्ययन करना चाहिये। सम्पूर्ण शास्त्रों में ईश्वर तत्व के ज्ञान के लिये भगवद्गीता के समान दूसरी पुस्तक नहीं है। महाभारत में लिखा है-

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

गीता के अध्ययन से ईश्वर में पूर्ण श्रद्धा हो सकती है। यदि इन ग्रन्थों के समझने की बुद्धि भी न हो तो उनको परम पिता परमात्मा से नित्य प्रति एकान्त में सच्चे हृदय से विनय भाव पूर्वक गद्गद् होकर प्रेम सहित विशुद्ध श्रद्धा होने के लिये प्रार्थना करनी चाहिये। उस दया सागर के सामने की हुई सच्चे हृदय की प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं होती। इस अभ्यास से परमात्मा में तर्क रहित पूर्ण श्रद्धा हो सकती है। बिना श्रद्धा के ईश्वर तत्व का ज्ञान हो ही नहीं सकता वर उत्तरोत्तर उसका पतन ही सम्भव है। जैसे गीता में लिखा है:-

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्यु संसार वर्त्मनि॥ (गी० ९,३

हे परन्तप! इस तत्वज्ञान रूप धर्म में श्रद्धा रहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्यु रूप संसार चक्र में भ्रमण करते हैं।

अतः ईश्वर तत्व के जानने के लिये श्रद्धा की परम आवश्यकता है। क्योंकि श्रद्धा से ही ईश्वर के तत्व का ज्ञान होकर परम शान्ति प्राप्त होती है गीता में भगवान ने कहा है:-

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥ गी०४.३९

जितेन्द्रिय, तत्पर हुआ, श्रद्धावान् पुरुष ज्ञान को प्राप्त होता है। ज्ञान को प्राप्त होकर तत्क्षण भगवत्प्राप्ति रूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

इसलिये ईश्वर में अनन्य श्रद्धा होने के लिये कटिबद्ध होकर प्राणार्पण से चेष्टा करनी चाहिये।

उपर्युक्त चार साधनों में से किसी एक का या अधिक का जो जितना अभ्यास करेगा, उसकी उतनी श्रद्धा बढ़ेगी एवं उस परमपिता परमेश्वर में उतना ही अधिक प्रेम होगा। सभी साधनों का पालन करने से शीघ्र ईश्वर में श्रद्धा हो सकती है एवं आदर और प्रेम से किया हुआ अभ्यास अन्तःकरण को पवित्र करके बहुत अधिक श्रद्धा बढ़ा देता है।

(३) उपर्युक्त साधनों का प्रेम और आदर से जितना अधिक अभ्यास किया जाता है उतना ही शीघ्र मनुष्य का हृदय पवित्र हो जाता है। हृदय पवित्र होने के साथ ही परमेश्वर में श्रद्धा बढ़ती है। श्रद्धा की वृद्धि से परमेश्वर में सर्वदा दृढ़ भावना बढ़ती है। भावना के दृढ़ होने ने से सर्वत्र ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन होने लगता है। उस समय वह सर्व व्यापी परमेश्वर सीयाराम मय देखने वाले को सीयराममय एवं केवल राममय देखने वालों को केवल राममय दिखलायी पड़ने लगता है।

गोविन्द चिन्तन

(रचयिता श्रीमती व्रजकुमारी "विदुषी" आश्रम)

रे चित चिन्तय यशुमति बालम् ॥
ब्रज गोपी गण जन मन रंजन।
भंजन भूत भ्रम भव भय जालम् ॥
गोधन पालक खल दल घालक।
घालक दुःख प्रद अघ दल कालम् ॥
श्रम कण सिंचित कपिभिरर्चित।
चर्चित चन्दन मृग मद भालम् ॥
पद्म पोषित नूपुर शोभित।
मोहित सुर गति मन्द मरालम् ॥
वेणु विकस्वर वादन सुमधुर।
मधुर मनोहर हास्य विकाशम् ॥
मन्मथ मथितं चापं व्यथितं।
कथितोन्नत भ्रू बंक विलासम् ॥
कटि तट कलितं कृश कल फलितं।
दलितं मृग पति गर्वित मानम् ॥
दधि नवनीतं चौरोद्भूतं।
पीतं द्युति घन पट परिधानम् ॥
वपु कज्ज कान्तं नाशक ध्वान्तं।
शान्तं दामिनी दलन दुकूलम् ॥
पंकज लोचन जन हृदि शोचन।
मोचन 'व्रज" जन संसृति शूलम् ॥

योग

(ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वति)

तुमको योग की इच्छा किस लिए है ? शक्ति प्राप्त करने के लिए ! शान्ति और आनन्द प्राप्त करने के लिए ? अथवा जनता की सेवा करने के लिए।

इनमें से कोई भी अभिप्राय यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि तुम इस पथ पर चलने के अभिलाषी हो । तुमको इस प्रश्न का उत्तर देना चाहिए। क्या तुमको परमात्मा की प्राप्ति के लिए योग की इच्छा है ? क्या परमात्मा की प्राप्ति तुम्हारे जीवन का मुख्य ध्येय है ? और क्या यह इतनी अनिवार्य बात है कि इसके बिना तुम रह ही नहीं सकते ? क्या तुम यह अनुभव करते हो कि इसके बिना जीवन ही व्यर्थ है ? यदि ऐसा है तब ही यह कहा जासकता है कि तुमको इस मार्ग की अभिलाषा है।

सब से मुख्य बात परमात्मा की प्राप्ति की आकांक्षा है। इसके पश्चात् तुमको इस अंकुर की रक्षा करना है और सदैव सावधान, और जीवित जाग्रत रहना है और इस की पूर्ति के लिए जो आवश्यक बात है वह एकाग्रता है। चित्त को परमात्मा में समाहित करना है और यह इस उद्देश्य से कि अपनी इच्छा को अविकल और पूर्ण रूप से परमात्मा को समर्पण कर देना है।

ध्यान हृदय में लगाओ और उसमें प्रवृष्ट होजाओ, अत्यन्त गहराई और दूर तक हृदय में घुस जाओ। अपनी चेतनता और चित्त की समस्त वृत्तियों को जो बाहर बिखरी हुई हैं समेटो और डुबकी मारकर उसमें डूब जाओ। हृदय की गहन शान्त गुहा में अग्नि प्रज्वलित हो रही है।

ध्यान करने के अन्य केन्द्र भी हैं जैसे शिर के ऊपर, (दशं द्वार) और भ्रकुटी। प्रत्येक की अपनी २ सामर्थ्य है और प्रत्येक में संयम करने से विशेष फल की प्राप्ति होती है। परन्तु केन्द्र हृदय में स्थित है और हृदय ही से समस्त केन्द्र भूत गतियों का संचालन होता है। परिवर्तन और अनुभव करने की शक्ति का उत्तेजन और संचालन यहीं से होता है।

योगाभ्यास करने के लिए उद्यत होने वाले को क्या करना चाहिए ? सब से प्रथम यह बात है कि हम अपने अस्तित्व के बहुत क्षुद्र अंश से वाकिफ़ हैं और विशेषतः हम अपने आपे से अनभिज्ञ हैं। यही अनभिज्ञता हमको अधोगति में रखती है और हमारे पुनरोत्थान के स्वभाव को दबाए रखती है। इसी के कारण हम अपना परिवर्तन और सुधार नहीं कर सकते। इसी अनभिज्ञता के कारण आसुरी शक्तियां हमारे अन्दर प्रवेश कर जाती हैं और हमको अपना गुलाम बना लेती हैं। तुमको अपने आप से सचेत रहना चाहिए और अपने स्वभाव और वृत्तियों को जानना चाहिए। तुमको यह अवश्य जानना चाहिए कि तुम्हारे अन्दर किस तरह विचार उत्पन्न होते हैं, किस तरह तुम उनको अनुभव करते हो और किस तरह कर्म करते हो ! तुमको अपने अभिप्राय और आवेगों को अवश्य समझना चाहिए और उन शक्तियों को जानना चाहिए जो गुप्तरीति से या प्रत्यक्ष रूप से आपको प्रेरित करती हैं। वास्तव में तुमको

अपनी अस्तित्व रूपी मैशीन के प्रत्येक भाग को प्रथक करलेना चाहिए। यदि तुम एक बार चेतन हो जाओगे तो तुमको भलाई बुराई की पहचान हो जावेगी और तुम उसमें परिवर्तन कर सकोगे। तुमको उन शक्तियों का पता लग जावेगा जो अधोगतिको लेजाने वाली हैं और जो उन्नत करनेवाली हैं। जब तुमको ठीक और ग़लत, सत्य और झूठ, दैवी और आसुरी भावों का पता लगजावे तो अपने ज्ञान के अनुसार दृढ़ता से कर्म्म करना चाहिए अर्थात् निश्चय पूर्वक ठीक को ग्रहण करके ग़लत को त्याग देना चाहिए। पद २ पर तुमको द्वन्द्व का सामना करना पड़ेगा और हर अवस्था में तुमको अपनी पसन्द से काम लेना होगा। तुमको सन्तुष्ट, अविचल, सावधान और जाग्रत रहना होगा जैसा कि पारदर्शी कह गए हैं। तुमको प्रत्येक अवस्था में दैवी भावों के मुकाबले में आसुरी भावों को त्याग देना चाहिए।

क्या योग संसार की सेवा के लिए है? नहीं यह परमात्मा के लिए है। हमारा काम लोगों की भलाई करना नहीं है बल्कि परमात्मा को प्रत्यक्ष करना है। हम यहाँ इसलिए नहीं आए हैं कि परमात्मा की मरज़ी को मालूम करें बल्कि परमात्मा की मरज़ी के अनुसार काम करें ताकि हम उसके ओज़ार बनकर उसके विकाश के नियम में सहायक बनकर पृथ्वी पर उसके राज्य को स्थापित कर सकें। वही मनुष्य जो परमात्मा की मरज़ी पर अमल करेंगे उसकी कृपा के पात्र बन सकेंगे, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य मात्र उसकी कृपा से लाभ उठा सकेंगे या नहीं यह बात स्वयं मनुष्यों की स्थिति पर निर्भर है। यदि वर्तमान स्थिति से अनुमान लगावें तो इस बात की बहुत कम आशा है *। आप देख रहे हैं कि साधारण मनुष्यों की आजकल क्या वृत्ति है? मनुष्य परमात्मा की चर्चा करने ही से नाराज़ होजाते हैं और उनके दिमाग़ फिर जाते हैं। वह ऐसा अनुभव करने लगते हैं कि परमात्मा की चर्चा करने उसको मानने में सांसारी वस्तुओं को जिन से उनका बड़ा प्रेम है त्यागना पड़ेगा। क्या नित्य प्रति मनुष्यों की चीख़ पुकार परमात्मा की मरज़ी के विरुद्ध नहीं हो रही हैं! यदि मनुष्य समाज को परमात्मा की आमद से कुछ लाभ उठाने की आशा है तो अपना सुधार करना होगा। हम सब पूर्व योनियों में मिल चुके हैं यदि ऐसा न होता तो हमारा यहां एक साथ जन्म न होता। हम सब एक ही पिता की सन्तान हैं और अनन्य समय से परमात्मा के दर्शन करने के लिए और उसके राज्य की स्थापना के लिए प्रयत्न करते रहे हैं।

भजन

(१)

यह जग स्वप्ना है रजनी का, क्या कहे मेरा २ रे ॥टेक॥
मात तात सुत दारा मनोहर, भाई बन्धु अरु चेरा रे।
आपो अपने स्वारथ के सब, कोई नहीं है तेरा रे ॥ १
जिनके हेत करत धन संचय, कर २ पाप घनेरारे।
अब यमराज पकड़ ले जावे, कोई न संग चलेरारे ॥ २

* वर्तमान स्थिति हमको बतलारही है कि शीघ्र ही संसार मे परमात्मा का राज्य स्थापित होगा कारण अंधेरात के पश्चात् ही उजाला आरम्भ होता है! (सम्पादक)

ऊंचे २ महल बनावे, देश दिगन्तर घेरारे।
सब ही ठाठ पड़ा रह जावे, होत जंगल में डेरारे ॥३
इतर फुलेल मले जिस तन को, अन्त भस्म की ढेरारे।
महानन्द स्वरूप बिन जाने, फिरत चौरासी फेरा रे ॥४

(२)

हम कूचे दरे यार से क्या टल के जायंगे!
हम न पत्थर हैं कि ठुलकने को फिसल जायेंगे ॥१॥
वसले सनम को छोड़ कर क्या काबे जायेंगे ॥ २ ॥
वहां भी वही सनम है तो क्या मुंह दिखायेंगे ॥ ३ ॥
हम अपने कूचे यार को काबा बनायेंगे ॥ ४ ॥
लैली बनेंगे हम उसे मजनूं बनायेंगे ॥ ५ ॥
गैरों से मत मिलो कि सितमगर बनायेंगे ॥ ६ ॥
हम से मिला करो तुम्हें दिलवर बनायेंगे ॥ ७ ॥
आसन जमाये बैठे हैं दरसे न जायेंगे ॥ ८ ॥
हम कैहरुवा बनेंगे तुम्हें माहरू बनायेंगे ॥ ९ ॥

(३)

बिन प्रेम रस चाखा नहीं, अमृत पिया तो क्या हुआ।
जिन इश्क में सिर ना दिया, युग २ जिया तो क्या हुआ ॥
मनहूर पंथ में साबित न किया आपको।
आलिम अरु फाजिल होय के, दाना हुआ तो क्या हुआ ॥
औरों नसीहत है करे और खुद अमल करता नहीं।
दिलका कुफ़र टूटा नहीं, काजी हुआ तो क्या हुआ ॥
देखी गुलिस्तां बोस्तां, मतलब न पाया शेख का।
सारी किताबों याद कर, हाफ़िज़ हुआ तो क्या हुआ ॥
जब तक प्याला प्रेम का पीकर मगन होता नहीं।
तार मंडल बाजते, जाहर सुना तो क्या हुआ ॥
जब प्रेम के दरियों में, गरकाब होता नहीं।
गंगा यमुन गोदावरी, न्हाता फिरा तो क्या हुआ ॥
प्रीतम से किंचित प्रेम नहीं, प्रीतम पुकारत दिन गया।
मतलब हासिल न हुआ, रो २ मुआ तो क्या हुआ ॥

(४)

अब मैं अपने राम को रिझाऊं॥
डाली छेडूं न पत्ता छेडूं, ना कोई जीव सताऊं॥
पात २ में प्रभु बसत हैं, वाही को शीस नवाऊं।
गंगा जाऊं न यमुना जाऊं, ना कोई तीरथ न्हाऊं॥
अठ सठ तीरथ घट के भीतर, तिन्ह ही में मल २ न्हाऊं
औषध खाऊं न बूंटी लाऊं, ना कोई वैद्य बुलाऊं॥
पूर्ण वैद्य मिले अविनाशी वाही को नबज़ दिखाऊं।
ज्ञान कुठारा कस कर बान्धू, सुरत कमान चढ़ाऊं॥
पांच चोर बसें घट भीतर, तिन को मार गिराऊं।
योगी होऊं न जटा बढ़ाऊं, ना अंग विभूत रमाऊं॥
जोहि रंग रंगे आप विधाता, और क्या रंग चढ़ाऊं।
चन्द्र सूरज दोऊ सम कर राखो, निज मन सेज बिछाऊं
कहत कबीर सुनो भाई, साधो आवागमन मिटाऊं ६

(५)

इक ही दिल था सो भी दिलवर ले गया अब क्या करूं।
दूसरा पाता नहीं किसको कहूं अब क्या करूं॥
ले चुका था जाने जाना जाको पहिले हाथ से।
फिर भी हमले कर रहा किसको कहूं अब क्या करूं॥
हम तो दर पर मुन्तज़िर थे तिश्नाए दीदार के।
पहुंचते बिसमिल किया किसको कहूं अब क्या करूं॥
यादगार के लिये रहता था फोटो जिस्मो जां।
वह भी घायल कर दिया किसको कहूं अब क्या करूं॥
यार के मुंह पर झरोके से नज़र इक जा पड़ी।
देखते घायल हुआ किस को कहूं अब क्या करूं॥
आप को भी कतल कर फिर आप ही इक रह गये।
वाह नज़ाकत आप की, किसको कहूं अब क्या कहूं॥